बिहार की लोक कथाएं



बिहार की लोक कथाएं

(भाग- 2)

मृदुला सिन्हा

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

फाल्गुन 1908 (मार्च 1987)

मूल्य : 7 रुपये

निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नई दिल्ली- 110 001 द्वारा प्रकाशित।

विक्रय केंद्र ● प्रकाशन विभाग

- सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली- 110 001
- कामर्स हाउस, करीमभाई रोड, बालार्ड पायर, बंबई- 400 038
- 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता- 700 069
- एल.एल. आडीटोरियम, 736 अन्नासलै, मद्रास- 600 002
- बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना- 800 004
- निकट गवर्नमेंट प्रेस, प्रेस रोड, त्रिवेंद्रम- 695 001
- 10 बी, स्टेशन रोड, लखनऊ- 226 019
- राज्य पुरातत्वीय संग्रहालय बिल्डिंग, पब्लिक गार्डन्स, हैदराबाद- 500 004

ए.जे. प्रिंटर्स, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित।

यह पुस्तक क्यों ?

लोक कथाओं का विचरण क्षेत्र कल्पना-लोक ही नहीं होता, बल्कि उनमें वहां के जीवन के स्पन्दन भी निहित होते हैं। अपने क्षेत्र की जलवायु,प्राकृतिक बनावट और जीवन-पद्धति के सांचे में ही लोक कथाएं ढलती हैं और श्रव्य-परंपरा के माध्यम से अपने अंचल में लहलहा उठती हैं। लोक-मन अत्यंत सरल, सहज और विश्वासी होता है। मन की यही विशेषता उसे अलौकिक और चमत्कारिक तत्वों से जोड़ती है। फलतः वहां के जीवन की गतिविधियों और कथाओं में भी ऐसी घटनाओं को स्वाभाविक स्थान प्राप्त हो जाता है। ये कथाएं भले ही ऐसी चमत्कारिक क्यों न हों, जिन पर हमारा सजग मन और चेतन बुद्धि विश्वास नहीं करती, लेकिन उनके माध्यम से दिए जानेवाले लोक-उपदेशों की उपयोगिता को अस्वीकार करना कठिन होगा। इस तरह ये लोक कथाएं जहां उस अंचल को संस्कार देने का पुनीत, गहन-गंभीर कार्य करती हैं, वहीं आदिम संस्कृति को सहेजकर रखनेवाली मंजूषा का भी काम करती हैं। और ऐसे समय में जबकि विज्ञान की प्रगति के कारण समय-चक्र तेजी से घूम रहा है, तब इस धरोहर को मूल रूप में बनाए रखने का दायित्व बढ़ जाता है। इसका सबसे अच्छा माध्यम यही हो सकता है कि हम इस रूप को अक्षर-बद्ध कर लें, क्योंकि अक्षर का तो कभी क्षरण नहीं होता। समय और स्थान से दूर जन-समुदाय के हाथ में ये पुस्तकें उन्हें अपने अतीत काल में विचरण कराकर, उनके चिन्तन में स्वस्थ आंचलिक तत्वों का संचरण कराकर, एक ऐसे ठोस एवं राष्ट्रव्यापी स्वरूप का निर्माण करने में सहायक होगी, जहां काल और स्थान की दूरियां सिमटकर घनीभूत हो सकेंगी।

इसी विश्वास के साथ श्रीमती मृदुला सिन्हा और प्रकाशन विभाग का यह सामूहिक प्रयास पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है।

— डा. श्याम सिंह शशि
निदेशक

विषय-सूची

1.	लक्ष्मी रो रही है	1
2.	नकलची	5
3.	बारमती	9
4.	महापंडितों का शास्त्रार्थ	14
5.	ठग विद्या	18
6.	भूतों की मालगुजारी	21
7.	नेवला भाई	26
8.	सब्ज परी	31
9.	भुलावन	35
10.	उजाड़न-बसावन	39

लक्ष्मी रो रही है

लौटन सिंह बारह वर्ष के ही थे जब उनके पिता की मृत्यु हो गई। कम उम्र में ही उनके सिर पर खेतीबाड़ी का बोझ आ गया। दस बीघा जमीन थी। लौटन सिंह अपने चाचा से पूछ-पूछ कर खेती करवाने लगे। सोलह वर्ष की अवस्था में उनकी शादी भी कर दी गई। उनके खेत में मजदूर काम करते। लौटन सिंह मजदूरों की पीठ पर सवार रहते। स्वयं भी एक मजदूर से ज्यादा काम करते। धीरे-धीरे जमीन भी खरीदनी प्रारंभ कर दी। दरवाजे पर दो जोड़ी बैल, भैंस व गायें बंधी रहती थीं। इन सब मवेशियों की सेवा वे अपने हाथ से करते। घर का कामकाज उनकी पत्नी करती। वे प्रतिवर्ष कुछ-न-कुछ जमीन खरीदते थे। उनके दो लड़के और दो लड़कियां भी हो गईं थीं।

उपज बढ़ गई थी। अपनी पत्नी की जिद पर उन्होंने एक पक्का घर बनवाया। उनकी पत्नी ने घर के कामकाज के लिए एक नौकरानी लगा ली। अपने पति की मदद के लिए भी एक नौकर रख लिया। लौटन सिंह फिर भी काम करने से बाज नहीं आते। उनकी पत्नी उन्हें काम करने से रोकती रहती। लौटन सिंह पत्नी को समझाते– "परिश्रम का फल मीठा होता है।" वे अपने बेटों से भी खेत पर काम करवाते। दोनों बेटों की शादी हो गई। गांव के लोग उनकी धन-सम्पत्ति देखकर उनसे ईर्ष्या करने लगे। उनके महाकंजूस होने की बात भी फैल गई। अपनी जिंदगी में उन्होंने कोई भोज-भात नहीं दिया। एक-एक पैसा संभालकर रखते। लौटन सिंह गांव वालों की धृष्टता की ओर ध्यान भी नहीं देते। वे इसे लक्ष्मी की कृपा मानते थे। अपनी पत्नी से कहा करते– "यह सब लक्ष्मी की कृपा से है। देखो, अपने जीवन में लक्ष्मी का कभी अनादर नहीं करना। अन्यथा वह रूठ जायेंगी।"

धन-दौलत बढ़ गयी। लेकिन लौटन सिंह का पहनावा नहीं बदला, खान-पान नहीं बदला। वह दिन में मोटे चावल का भात, दाल और मट्ठा, रात को रोटी और एक सब्जी खाते। उनकी पत्नी थाली परोसने के बाद एक घी की भरी बोतल (जो उसके पिता की धरोहर थी) भी लाकर उनके सामने रख देती। एक सीक के सहारे बोतल से घी निकालते और भात में डाल लेते। खाते समय बोलते जाते– "वही घी (बोतल का), यही भात (थाली का)"। अपने पति को अच्छी चीजें खिलाने की उनकी पत्नी बहुत कोशिश करती। लौटन सिंह दुःखी मन से कहते– "फालतू खर्च करके लक्ष्मी का अपमान न करो। कितनी मुश्किल से हमारे घर लक्ष्मी आई है, तुम क्यों जल्दी भगाना चाहती हो?"

पत्नी को लौटन सिंह की बातें समझ में नहीं आती।

एक दिन किसी पड़ोसी के घर से खीर और दाल भरी पूड़ी आई। लौटन सिंह खाने बैठे। उनकी पत्नी ने बड़े प्रेम से अपने पति के आगे खीर-पूड़ी (उन दिनों यह अच्छा खाना समझा जाता था) लाकर रख दी। लौटन सिंह चौंक गये। बोले– "क्यों इतना खर्च करती हो?"

उनकी पत्नी ने कहा– "अपने घर नहीं बना है, रीझन सिंह के घर से आया है।" लौटन सिंह ने चैन की सांस ली। दूसरे-तीसरे दिन भी उनके सामने खीर-पूड़ी, कभी तरुआ, कभी पुआ आ जाता। तीसरे दिन वे चिल्ला पड़े– "लक्ष्मी को भगाने पर तुम क्यों तुली हो। क्यों रोज-रोज यह सब महंगी एवं स्वादिष्ट चीजें बनाती हो?" उनकी पत्नी सदा दूसरे के घर से आया सामान बताती। लौटन सिंह झल्लाते– "ये हमारे पड़ोसी लक्ष्मी का आदर करना नहीं जानते। देखना, लक्ष्मी इनके घर से भाग जायेगी। ये फिर दरिद्र हो जायेंगे।"

उनकी पत्नी मुंह पर आंचल डाले हंसती रहती। वह अपने ही घर में अच्छे-अच्छे पकवान बनाकर बच्चों को

बुढ़िया चिल्लाई– "उस बोतल का भी जाना जरूरी है।" घी की बोतल को ले जाया गया। श्मशान घाट पर बड़े बेटे ने घी पिता के शव पर उड़ेलते हुए कहा– "वही घी, यही बाबूजी।"

श्राद्ध पर बेटों ने बड़ा शानदार भोज किया। दस गांव के लोगों को खिलाया। जलेबी, पूड़ी, भुजिया, खाजा, लड्डू, चूड़ा, दही, माढ़ा, शकरौड़ी, न जाने कितने पकवान बने। बुढ़िया भंडार में गई। सभी पकवानों में से थोड़ा-थोड़ा निकाल लाई। एक कोने में केले के पत्तल पर सब लगाया। अपने पति के नाम से सारे पकवान अर्पित करती हुई बोली– "यह सब किसी के घर से नहीं आया है। अपने ही घर में बना है।" कहते-कहते रो पड़ी।

नकलची

चन्द्रावती अपने गांव की एक अनोखी नारी थी। वह स्वयं को पतिव्रता साबित करने के लिए कोई आडम्बर नहीं करती थी। वह स्वाभाविक ढंग से अपने पति को प्यार करती, उसकी सुख-सुविधा का ख्याल रखती। अन्य औरतों की तरह उसके भी जीवन में किसी वस्तु का अभाव होता, शारीरिक कष्ट होता, भावनात्मक चोट पहुंचती, लेकिन वह इन सबके लिए अपने पति को दोष नहीं देती थी। वह अपने सारे कष्टों को विधि का विधान समझती। कुल मिलाकर गृहस्थी की गाड़ी सुगमता से चल रही थी।

उनके पास दो बीघा जमीन थी। दो बैल एवं एक गाय थी। पति रामधन जानवरों की देखभाल करता और खेत पर काम करता। चन्द्रावती अपने घर-गृहस्थी के काम में जुटी रहती। कभी समय मिल जाता तो पति के काम में भी हाथ बंटाती। उन्हें एक-दूसरे से कोई शिकायत न थी।

चन्द्रावती ने बचपन में ही अपनी दादी से दो-तीन पतिपरायणा नारियों की कहानी सुन रखी थी। वे कहानियां उसके हृदय एवं मन पर अपनी अमिट छाप छोड़ गई थीं।

वह कभी अपनी पड़ोसिनों से भी नहीं उलझती। इधर-उधर की बातों में उसका मन न रमता। एक ही योजना, एक ही लक्ष्य था उसके जीवन का– अपने पति को खुश रखना।

वह पति को परमेश्वर ही मान बैठी थी और भला परमेश्वर भी कभी कोई गलती करता है?

पड़ोसिनों की नजर चन्द्रावती पर लगी रहती। वे सोचती– आखिर चन्द्रावती अपने पति से झगड़ती कब है? हमने कभी देखा ही नहीं। चलो कभी न कभी तो भांडा फूटेगा ही।

वैसे पड़ोसियों का उसके घर आना-जाना कम ही होता था। जब वह कभी किसी की चुगली नहीं करती, किसी को अपना दुखड़ा नहीं सुनाती थी तब भला उसके पास कोई पड़ोसिन क्यों आकर बैठती? पड़ोसिनों के पास अपने-अपने पतियों की शिकायत की लम्बी सूची के सिवाय था भी क्या? एक अपनी शंका प्रगट करती, "आखिर चन्द्रावती क्यूं हमसे कटी-कटी रहती है? दूसरी कटाक्ष करती–"सुना नहीं है, "काली गइया के अलग बथान"

एक दिन सुबह-सुबह ही गली के किनारे वाली अमीरमन उसके घर तूफान की तरह आ धमकी। अपने घर से ही गालियां बकती आ रही थी। चन्द्रावती के घर में प्रवेश करती हुई बोली– "अरे कहां चली गई? मुझे थोड़ी आग देना। सुबह-सुबह रोटी बनाकर मरदुआ के लिए खेत पर पनपिआई (नाश्ता) ले जाना है। बड़ा निकम्मा है अभागा।" चन्द्रावती ऊखल में धान कूट रही थी। अपने पति के लिए अमीरमन की गालियां सुन वह तिलमिला गई। बोली– "हाय-हाय! अमीरमन अपने पति को ऐसे गालियां नहीं देते। पति परमेश्वर होता है। उसकी पूजा करनी चाहिए।" अमीरमन चिल्लाई– "अरे, बड़ा आया है परमेश्वर बनने। वह तो करमजला है। हाय ... मैं भी कैसे उससे बंध गई। जिंदगी भर रोना ही रोना है।" अमीरमन के स्वर तीव्र हो गए थे। वह विलाप करने लगी थी। वहीं ऊखल के पास बैठ आंचल से मुंह ढक कर रोने भी लगी। चन्द्रावती को यह सब अच्छा नहीं लगा। वह जल्दी आग देकर उस कर्कशा को वापस भेजना चाहती थी। वह आग लेने रसोईघर में चली गई। रोती-कलपती अमीरमन ने एक बार आंचल हटाकर चन्द्रावती की ओर देखा। लेकिन वह वहां नहीं थी।



लेकिन यह क्या? उसने जो कुछ देखा, आश्चर्य से उसका मुंह खुला का खुला रह गया। उसने देखा कि चन्द्रावती के चले जाने के बाद भी ओखल का मूसल खड़ा ही था, गिरा नहीं। वह आंख फाड़े देखती रही। उसको संदेह हुआ कि चन्द्रावती के घर भूत-प्रेत का वास है। वह इतनी डर गई कि पति को गाली देना भी भूल गई।

इतने में चन्द्रावती आग लेकर आ गई। अमीरमन ने पूछा– "चन्द्रावती ! यह मैं क्या देख रही हूं। तुम्हारे चले जाने के बाद भी तुम्हारा मूसल ऊपर ही हवा में खड़ा रहा। क्या तुम कोई जादू-मंतर जानती हो ?"

"नहीं बहन ! मैं कोई जादू-मंतर नहीं जानती। लेकिन मैं पतिव्रता नारी हूं। इसलिए मैं कोई भी आश्चर्यजनक काम कर सकती हूं।" चन्द्रावती ने बड़ी स्थिरता से कहा।

"अरे, यह पतिव्रता क्या होती है, जरा मुझे भी समझाओ"– अमीरमन ने उत्सुकता से पूछा।

"पतिव्रता होने का मतलब है पति की सेवा करना और उससे लड़ाई-झगड़ा नहीं करना"– चन्द्रावती ने कहा। चन्द्रावती के करतब ने अमीरमन पर जादू सा कर दिया। हाथ कंगन को आरसी क्या? उसने अभी-अभी उसके करामात देखे थे। उसने जिज्ञासा भरे लहजे में पूछा– "बहन ! तुम क्या-क्या करती हो ? जरा हमें भी बताओ। हम तो नाहक जिंदगी बिता रहे है। कुछ तुम्हारी भी सीखें। शायद अब भी जिंदगी सुधर जाए ?"

चन्द्रावती ने कहा– "तुम पहले आराम से बैठ जाओ, फिर बताऊं। देखो, मैं सुबह-सुबह उठकर सबसे पहले पति की चरण-धूलि मस्तक पर लगाती हूं। उनको प्रेम से नाश्ता करवा कर खेत पर भेजती हूं। अपने घर का कामकाज करती हूं। जब पति बाहर से घर लौटते हैं तब उनके चरण धोकर पीती हूं। प्रेमपूर्वक पंखा झलकर उन्हें भोजन कराती हूं। मैं उनकी जूठी थाली में ही खाती हूं। मेरे पति मुझसे बहुत खुश रहते हैं। हम आपस में कभी झगड़ते भी नहीं।"

अमीरमन गाल पर दोनों हाथ रखें बैठ गयी थी और चन्द्रावती की बातें बड़े ध्यान से सुन रही थी। उसने सोचा, यह सब तो वह भी कर सकती है। उसने मन में निश्चय कर लिया कि वह भी आज से पतिव्रता नारी बनेगी। वह तुरंत ही चन्द्रावती के आंगन से निकल गई। पतिव्रता बनने की कल्पना में पति के लिए रोटी बनाना भी भूल गई। आग चन्द्रावती के घर ही छोड़ आई थी।

अमीरमन अपने घर के दरवाजे पर बैठी पति का इंतजार करने लगी। उसने एक पीतल के भगोने में पानी भर रखा था। अपने पति के लौटने पर उसके पैर धोकर पीने की योजना बना रही थी। मन ही मन वह अपनी दिनचर्या भी बनाती जा रही थी जिसमें पति की सेवा के सिवा उसे कुछ भी नहीं करना था। उसने भी अब तक कुछ खाया नहीं था। भला पतिव्रता नारी बिना पति को खिलाए कहीं खाती है ?

बैठे-बैठे वह चंचल चित नारी अपना धैर्य खोने लगी। उसने देखा, दिन चढ़ आया था। सामने गाय के बथान की ओड़ियानी (छप्पर का किनारा) के पास बेर (समय) खिसक गया था। लेकिन उसका पति अब तक हलवाही से नहीं लौटा। उसके मुंह से अनायास ही निकल गया, "यह करमजला मुझे पतिव्रता नारी भी नहीं बनने देगा।" लेकिन तुरंत ही उसने पति के लिए गाली निकालने के कसूर में अपने मुंह पर थप्पड़ जड़ दिए। थोड़ी देर चुपचाप बैठी रही। उसके पेट में चूहे चहलकदमी करने लगे थे। क्रोधाग्नि तेज होती जा रही थी। लेकिन फिर भी उसने मुंह पर ताला लगा रखा था। एकाएक उसने कुछ दूरी पर आते हुए अपने पति रामचरण को देखा। वह कुछ आश्वस्त हुई। पति जब दरवाजे पर आया तो वह चिल्ला पड़ी, "अरे, पहले हल वहीं रखकर इधर आओ। मुझे तुम्हारें पैर धोने हैं।"

उसका पति कुछ समझ नहीं सका। लेकिन पूछने की उसकी हिम्मत नहीं हुई। वह सीधे चला आया। पसीने से उसका बदन तर था। पैर कीचड़ में सने थे। वह अमीरमन के सामने आकर खड़ा हो गया। अमीरमन तमक कर बोली, "अरे नजदीक आओ न। मैं कोई हौआ हूं जो तुझे खा जाऊंगी ?" और उसके पैर पकड़कर भगोने में डुबोने लगी। पति रामचरण के पैर बहुत गंदे थे। अमीरमन गंदे पैरों को छू नहीं सकी। बोली, "मैं कहती हूं, इसमें अपने पैर धोओ न।" रामचरण ने पैर धो लिए। अमीरमन ने अपने आंचल से नाक ढंकी थी। उसने पैर धोए हुए पानी को पीना चाहा लेकिन एक घूंट से अधिक पी नहीं सकी। अपने आप बड़बड़ाई, "कितने गंदे पैर थे मरदुआ के।" फिर रामचरण से कहा, "जल्दी आओ खाने, मैं तुम्हें पंखा झलूंगी।" रामचरण के पल्ले कुछ नहीं पड़ रहा था, वह पत्नी के इशारे पर नाच रहा था।



वे लोग जंगल में रहने लगे। जंगल भयंकर था और खूख्वार एवं हिंसक जानवरों से भरा था। रात में सोते समय बारी-बारी से एक मित्र रखवाली किया करता था। रात के पहले पहर में बढ़ई के लड़के को रखवाली करनी थी, दूसरे पहर में सुनार को, तीसरे पहर में मंत्री के पुत्र को और चौथे पहर में राजा के लड़के को।

एक रात एक राक्षस को मनुष्य की गंध आई। वह तुरंत वहां पहुंच गया जहां ये चारों रह रहे थे। राजा का लड़का पहरा दे रहा था। उसने उस भयंकर काले राक्षस को आते देखा। वह जैसे ही उसके पास आया, नरसिंह ने अपनी तलवार से वार किया। राक्षस को चोट लगी। वह पीछे भागा। नरसिंह ने उसका पीछा किया और अंत में उसे मार ही डाला। दौड़ धूप में राजकुमार थक कर चूर हो गया। वह वहीं लेट गया और शीघ्र ही गाढ़ी नींद में सो गया।

जब उसकी नींद खुली, दिन चढ़ आया था। उसे अपने दोस्तों की याद आई। वह सरपट भागा, लेकिन अपने गंतव्य स्थान तक पहुंच नहीं पाया। घने जंगल में वह भटक गया।

कुछ दूरी पर पीपल का एक पेड़ था। वहां से दो रास्ते निकलते थे। राजकुमार वहीं खड़ा सोचने लगा। इतने में पीपल के पेड़ से आवाज आई– "यदि तुम यहां से बाएं जाओगे तो तुम छह महीने में रास्ता पूरा कर पाओगे।"

राजकुमार ने ऊपर देखा। वहां कोई न था। लेकिन पीपल के पेड़ से जो आवाज आई थी उस पर उसे विश्वास हो गया। उसे राक्षसों का डर न था। वह दूसरे रास्ते पर ही चलने लगा। चलते-चलते राक्षसों की नगरी में पहुंच गया।

एक राक्षस के दरवाजे पर वह रुका। आवाज लगाई। उस समय राक्षस कहीं बाहर गया था। राक्षस के यहां बारमती नाम की लड़की थी। आवाज सुन वह अंदर से बाहर आई। बारमती ने अपने दरवाजे पर एक मनुष्य को खड़ा देखा। उसके आश्चर्य एवं खुशी का ठिकाना न रहा। वह स्वयं एक मनुष्य जाति की लड़की थी। लेकिन वह जानती थी कि राक्षस उसे देखते ही मार डालेगा। फिर भी भविष्य की भयानक स्थिति की कल्पना में उसने वर्तमान को व्यर्थ नहीं गंवाया। उसने राजकुमार का स्वागत किया तथा उसे अपने घर के अंदर तहखाने में छुपाने का विचार कर लिया।

उधर राजकुमार के अन्य तीनों मित्र राजकुमार के वियोग में बड़े दुखी हुए। वे तीनों संन्यासी हो गए।

संध्या हुई। राक्षस अपने घर लौटा। थकामांदा था। जमीन पर निढाल हो कर गिरा और सो गया। रातभर बारमती को राजकुमार के बारे में चिंता रही। राक्षस दूसरे दिन उठा और अपनी मुंह बोली बेटी बारमती को अपने पास बुलाया। बोला– "बेटी !रात मैंने बहुत बुरे सपने देखे। मै केवल अपनी मृत्यु से भय खाता हूं। लेकिन मेरी मृत्यु कोई आसान बात नहीं। मुझे वरदान मिला है। मेरी मृत्यु का भी एक राज है।" यह कहकर वह कुछ देर मौन हो गया। बारमती ने भी बीच में कुछ कहना उचित न समझा। लेकिन वह राक्षस के मुंह से उसकी मृत्यु का राज सुनना चाह रही थी।

राक्षस फिर कहने लगा– "मेरी जान उस कुंए के नीचे एक बक्से में एक काली मक्खी के रूप में सुरक्षित है। यदि कोई राजकुमार अपनी पत्नी के व्यवहार से क्षुब्ध होकर इधर आए और उस मक्खी को मार दे तो मेरी जान निकल जायेगी। लेकिन इन सारे संयोगों का एक साथ मिलना आसान नहीं । साथ ही यह राज तुम्हारे सिवा कोई जानेगा भी नहीं। तू मेरी जान से भी प्यारी है। इसलिए मैंने तुम्हें अपना राज बता दिया। अच्छा मैं अब चला। तू दरवाजा बंद कर ले।"

बारमती का दिल बांसों उछल पड़ा। राक्षस की मृत्यु का राज जानकर वह बहुत खुश हुई। राजकुमार को वह पहली नजर में ही अपना दिल दे बैठी थी। उसने राजकुमार को जाकर सारा वृत्तांत सुनाया। उसने स्वादिष्ट खाना बनाया। दोनों ने स्नान-पूजा करके एक साथ खाना खाया। राजकुमार ने कुंए में प्रवेश किया। बारमती कुंए के चबूतरे पर खड़ी पहरा देने लगी। उसके दिल में खुशी एवं भय के भाव आ-जा रहे थे। वह स्थिर न थी। इधर-उधर चहलकदमी कर रही थी।

एकाएक उसे राक्षस की आवाज सुनायी दी। वह भय से थर-थर कांपने लगी। उसे काटो तो खून नहीं। मौत आंखों के सामने नाचने लगी थी। लेकिन यह क्या राक्षस वहीं धराशायी हो गया और उसके प्राणपखेरू उड़ गए। बारमती उसके नजदीक जाने की हिम्मत नहीं कर पा रही थी। एकाएक राजकुमार ने पीछे से आकर उसकी आंखें बंद कर दीं। वह कांप उठी। लेकिन राजकुमार के हाथों के स्पर्श से वह परिचित थी। उसने पूछा– "क्या हुआ ?"

राजकुमार ने कहा, "देख नहीं रही अपने सामने। मैंने काली मक्खी मारी और राक्षस का पत्ता कटा। चलो इसका दाह-संस्कार करें। आखिरकार तुम उसकी बेटी के समान हो।"

दोनों ने मिलकर मृत-राक्षस का दाह-संस्कार किया। दसवें दिन बारमती नदी में स्नान कर रही थी। बारमती के बड़े-बड़े बाल सोने जैसे थे। बारमती ने अपना एक बाल एक डिब्बे में बंद कर नदी में बहा दिया।

बाल बहता हुआ बहुत दूर पहुंचा। वहां एक राजा नदी में स्नान कर रहा था। डिबिया उसके हाथ लगी। डिबिया खोलकर उसने सुनहरा बाल देखा। बाल की सुंदरता पर मोहित हो, उसने बालवाली लडकी से शादी करने का मन ही मन प्रण कर लिया। घर आकर उसने सारे शहर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि जो भी व्यक्ति उस बालवाली लड़की का पता लगाएगा, उसे वह अपना आधा राज्य दे देगा। लोगों ने राजा की घोषणा सुनी। लेकिन लोगों को यह काम असंभव लगा। आधे राज्य का लोभ होने पर एक बुढ़िया राजा के पास आई, और कहा – "मैं उस लड़की का पता लगा सकती हूं। लेकिन मुझे एक अनपन (एक प्रकार की बहुत ही हल्की लकड़ी) की डोंगी (नाव) चाहिए। राजा ने झट अनपन की डोंगी तैयार करवा दी। वह डोंगी बिजली की गति से भी तेज चलने वाली थी।

बुढ़िया डोंगी पर सवार हो यात्रा पर निकल पड़ी। जहां कहीं डोंगी पहुंचती बुढ़िया वहां रुकती और उस सुनहरे बालों वाली परी की खोज करती। कहीं पता न चला। लेकिन उसने हार नहीं मानी और खोज जारी रखी। चलते-चलते वह उस ओर पहुंच गई जहां बारमती का घर था। बारमती अपने छज्जे पर बाल सुखा रही थी। बुढ़िया ने उसे देख लिया। उसने तत्क्षण डोंगी रुकवायी। मन ही मन कहा– "अब चिड़िया जाल में फंस के रहेगी।"

वह डोंगी से उतरकर बारमती के घर पहुंच गई और दरवाजा खटखटाया। बारमती ने दरवाजा खोला। बुढ़िया को बड़े आश्चर्य से देखते हुए पूछा– "तुम कौन हो ?"

"मैं तुम्हारी मौसी हूं। तुम भला मुझे कैसे पहचानोगी। जमाना गुजर गया जब मैंने तुझे यहां छोड़ा था। मैं आज तुझसे मिलने आई हूं।" बुढ़िया ने कहा। बारमती को विश्वास न हुआ, फिर भी उसने उसे घर में बैठाया और आदर-सत्कार किया। इसी बीच राजकुमार शिकार से लौटा। बुढ़िया को देखकर उसका माथा ठनका। लेकिन बुढ़िया ने भी अपने बाल धूप में नहीं पकाए थे। उसने राजकुमार के मन के भाव भांप लिए। सहज भाव से बोली–"बेटा ! मैं बारमती की मां की बहन हूं। काश !आज मेरी बहन जिंदा होती। तुम दोनों की जोड़ी देख कितनी प्रसन्न होती। चलो ! बहन की नजर से मैं ही देख रही हूं।"

बुढ़िया ने अपनी मीठी-मीठी एवं स्नेह मिश्रित बातों से दोनों को खुश कर लिया। बुढ़िया अपने दांव की ताक में थी।

तीनों साथ-साथ रहने लगे। इसी बीच एक दिन बारमती ने राजकुमार से पूछा– "यदि मैं पहले मर गई तो तुम क्या करोगे ?" राजकुमार ने कहा– "ऐसी अशुभ बातें क्यों करती हो ? अच्छा तुम ही बताओ यदि मैं मर गया, तुम क्या करोगी ?" बारमती ने उसके मुंह पर हाथ रखकर उसे चुप करा दिया।

थोड़ी देर दोनों शांत बैठे रहे। दोनों एक दूसरे की आंखों में झांक रहे थे। एक के बिना दूसरे का जिंदा रहना असंभव-सा लग रहा था। राजकुमार ने शांति भंग करते हुए कहा– "अच्छा रानी, मैं तुम्हें एक बात बताऊं। मैं यदि मर गया तो तुम मेरे शरीर को जलाना मत। एक बक्से में बंद करके रख देना। मेरा एक दोस्त है, वह मुर्दे में जान डाल सकता है। वह दोस्त अभी कहीं भटक गया है।" उसने इतना कहा और अपनी अंगुली से निकालकर एक अंगूठी बारमती की अंगुली में डाल दी। दूसरे ही दिन बुढ़िया ने राजकुमार को एक जहर मिला हुआ लड्डू खिला दिया। राजकुमार, बारमती को रोता-कलपता छोड़ चल बसा। बुढ़िया भी बारमती के साथ रोने-चिल्लाने का दिखावा करती रही। फिर उसने बारमती को समझाते हुए कहा– "रोने-धोने के लिए तुम्हारी सारी जिंदगी पड़ी है। अभी तो इसका दाह-संस्कार करना जरूरी है।"

लेकिन बारमती ने राजकुमार की लाश को जलाया नहीं, बल्कि एक बक्से में बंद करके रख दिया। वह घंटों बक्से के पास बैठी रहती। बक्से को निहारती रहती। पता नहीं उस बक्से में उसके कौन-कौन से सुनहरे सपने बंद थे।

एक दिन बुढ़िया ने कहा– "बेटी, चलो तुम्हें नदी में स्नान करा लाऊं। आनाकानी के बाद बारमती तैयार हो गई। नदी किनारे अनपन की डोंगी भी थी। बुढ़िया ने छल से बारमती को उसमें बैठाया और छू-मंतर हो गई।

अब बारमती ने बुढ़िया का उद्देश्य समझ लिया। जहां डोंगी रुकी, वहीं एक राजा बड़ी बेसब्री से उसका इंतजार कर रहा था। उसने अपने छज्जे से ही डोंगी में बैठी बारमती को देख लिया और दौड़ा हुआ उसके पास पहुंचा। राजा उसे हृदय से लगाना चाह रहा था। उसे अब धैर्य न था। लेकिन बारमती ने उसे रोकते हुए कहा– "सुनो ! मैं तुम्हारी भावनाओं की कद्र करती हूं। मैं तुम्हारी हो के रहूंगी, विश्वास करो। लेकिन मैंने दो वर्षों तक का व्रत रखा है। इस बीच कोई मर्द मेरा शरीर नहीं छू सकता। मैं केवल साधु, संन्यासी एवं भिखमंगों से मिलूंगी, उन्हें भिक्षा दूंगी। यदि तुम मुझे चाहते हो तो ऐसा प्रबन्ध कर दो।

राजा बारमती के पीछे ऐसा दीवाना हो गया था वह उसकी एक भी बात टाल नहीं सकता था। उसने राजमहल के एक भाग में बारमती के ठहरने का प्रबन्ध कर दिया और भिक्षा बांटने की भी व्यवस्था कर दी। राजा ने अपने नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया। दूर-दूर से साधु-संन्यासी आने लगे। जो वहां से जाते, रानी की महिमा का बखान करते जाते।

एक दिन तीन साधु आए। रानी ने ज्यों ही भिक्षा देने को हाथ बढ़ाया, सुनार के लड़के ने बारमती की अंगूठी पहचान ली। उसने कहा– "यह तो मेरे दोस्त राजकुमार नरसिंह की अंगूठी है। यह तुम्हारी अंगुली में कैसे ?"

बारमती को विश्वास हो गया कि वे उसके मृत राजकुमार के मित्र ही हैं। उसने सारी कहानी कह सुनाई। बढ़ई के लड़के ने झटपट खटोला बनाया। उस खटोले पर चारों बैठ गए और पलक झपकते उस राक्षस के घर पहुंचे जहां राजकुमार का शरीर एक बक्से में बंद था। उन लोगों ने बक्सा खोला। केवल हड्डियां बच गई थीं। मंत्री के लड़के ने अपना करतब दिखाया। उसने हाथ में नदी का जल लिया और कुछ मंत्र पढ़ने के बाद उन हड्डियों पर छिड़क दिया। राजकुमार उठ बैठा। बारमती को अपने दोस्तों के बीच देख उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। चारों दोस्त और बारमती चैन से रहने लगे।

महापंडितों का शास्त्रार्थ

उन दिनों मिथिला में बड़े-बड़े पंडित रहा करते थे। वे शास्त्र-अध्ययन के लिए मिथिला से बाहर भी जाया करते थे।

मिथिला राज्य के एक गांव में रामखेलावन पंडित का घर था। उनके दो लड़के थे। उनकी बड़ी इच्छा थी कि दोनों पुत्र अच्छे पंडित बनें। बड़े लड़के के लिए उन्होंने बड़ा परिश्रम किया। खुद थोड़ा-बहुत पढ़ाया। दूसरे ज्ञानी-पंडित के भी पास उसे पढ़ने भेजा। लेकिन वह पढ़ नहीं सका। पढ़ाई-लिखाई में उसकी कोई रुचि नहीं थी। भैंसे पालना, कुश्ती लड़ना उसे ज्यादा पसंद था। इधर छोटे लड़के की उम्र भी पढ़ने-लिखने की हो गई। पंडितजी ने उसे अपने गांव से दूर गुरुकुल में पढ़ने भेज दिया। छोटे लड़के देवेन्द्र झा का पढ़ने में बहुत मन लगता था। जब कभी राम खेलावन पंडित मखाना और दही-चूड़ा के साथ अपने पुत्र से मिलने गुरुकुल जाते, देवेन्द के गुरुजन उसकी प्रशंसा करते नहीं अघाते। राम खेलावन पंडित को विश्वास हो गया कि उनका छोटा पुत्र पंडित बनेगा और उनकी आशा-पूरी करेगा।

देवेन्द्र झा ने गुरुकुल की पढ़ाई समाप्त कर ली। विदाई समारोह में राम खेलावन पंडित को भी आमंत्रित किया गया। गुरुकुल में छात्रों की एक शास्त्रार्थ प्रतियोगिता रखी गई। कार्यक्रम में अपने पुत्र की वाक्पटुता से पंडितजी का हृदय गद्गद् हो गया। उनकी आंखों से खुशी के आंसू झरने लगे। उनकी बगल में बैठे एक सज्जन ने पूछा– "क्या बात है भाई साहब। आप रो क्यों रहे हैं ?"

राम खेलावन पंडित कंधे पर रखे गमछे से अपनी आंखें पोंछते हुए बोले-"नहीं, नहीं। मैं रो नहीं रहा हूं। मैं तो बहुत खुश हूं। आपके सामने जो बोल रहा है वह मेरा ही लड़का है।"सज्जन को समझते देर न लगी कि पुत्र की उपलब्धि पर पिता खुश है।

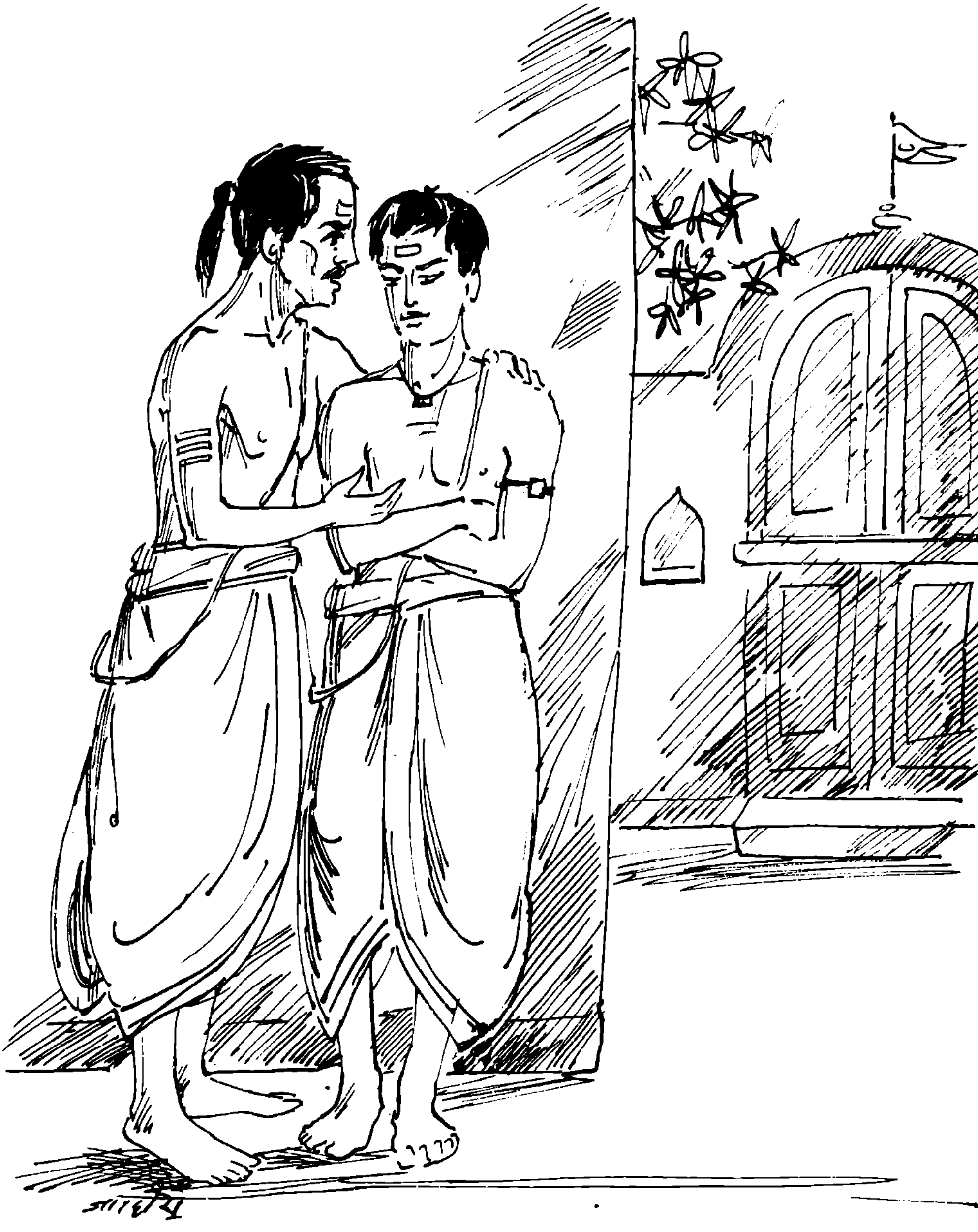
पुत्र को गुरुकुल से लेकर जब पंडितजी चलने लगे तब गुरुकुल के प्रधानाचार्य ने कहा– "आप अपने पुत्र को उच्च शिक्षा के लिए वाराणसी भेज दीजिए। यह बड़ा होनहार लड़का है।"

पंडितजी की हैसियत कोई अच्छी नहीं थी। फिर भी उन्होंने अपने लड़के को वाराणसी भेज दिया।

कुछ दिनों बाद ही पंडितजी की मृत्यु हो गई। तब तक उनका बड़ा लड़का लखिन्दर घर-गृहस्थी और यजमानिका संभालने लायक हो चुका था। उन्होंने मरते समय बड़े पुत्र से कहा– "देखो बेटा !देवेन्द्र की पढ़ाई हरगिज न छुड़ाना। उसे पढ़-लिखकर बड़ा पंडित बनने देना। मैं उसे मिथिला का सबसे बड़ा पंडित बनाना चाहता था। यह जिम्मेदारी मैं तुम्हें सौंपे जा रहा हूं।"

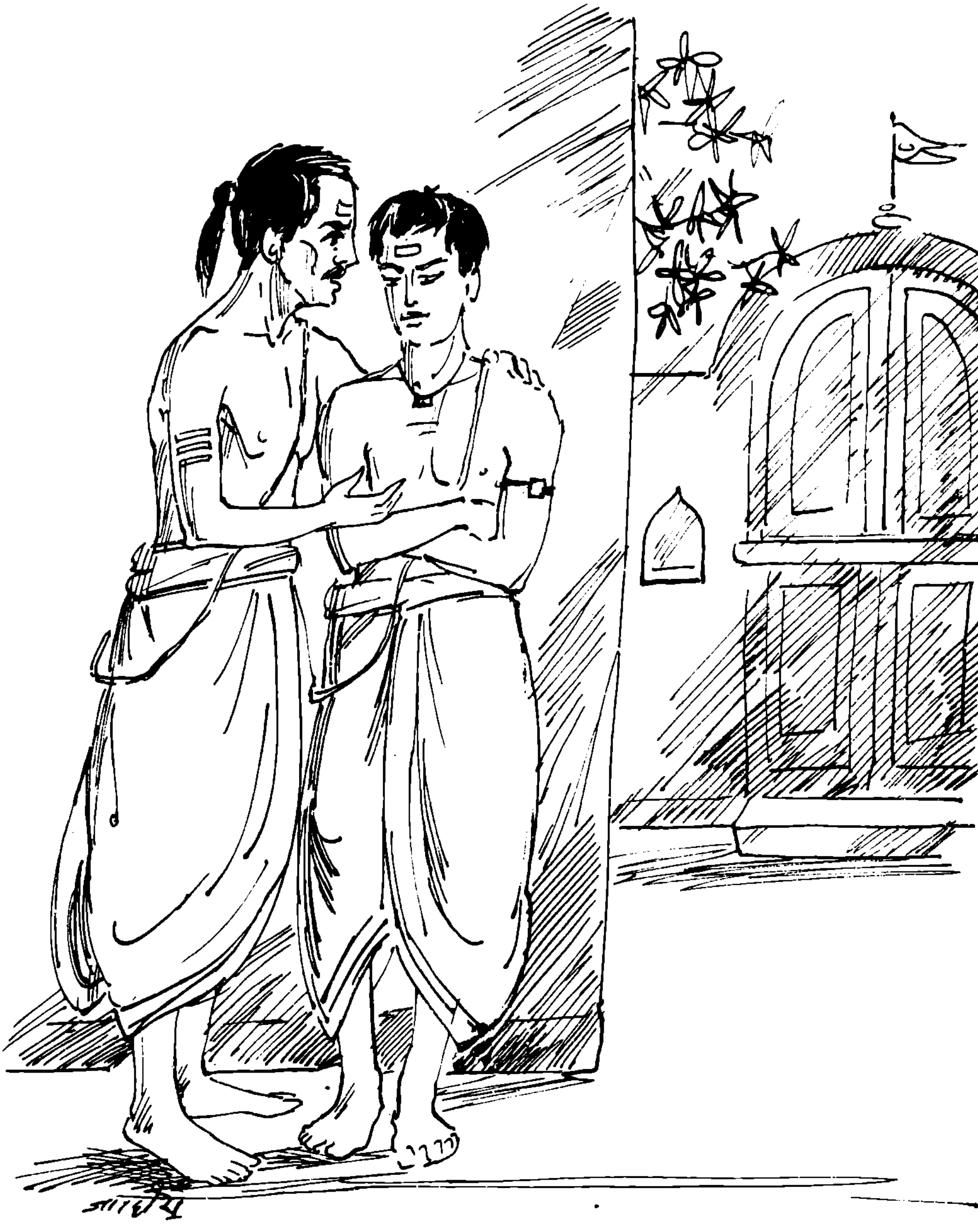
लखिन्दर झा ने पिता की अन्तिम इच्छानुसार कोई कसर नहीं छोड़ी। देवेन्द को भी पिता का अभाव बिल्कुल नहीं खला। बड़ा भाई पैसे-कौड़ी का इंतजाम करता। यों लखिन्दर अनपढ़ था, लेकिन उसे पढ़ाई की कीमत समझ में आ गई थी। उसने एक दिन भाई को चिट्ठी लिखवायी– "तुम पाई-कौड़ी (रुपये-पैसों) की चिंता मत करना। पूरी पढ़ाई कर, बहुत बड़ा पंडित बनकर, गांव लौटना। मैं तुम्हें पाई-कौड़ी भेजता रहूंगा।"

देवेन्द्र की पढ़ाई समाप्त हो गई। वह अपने सामान सहित घर लौट रहा था। चलते-चलते वह मिथिला के ही एक गांव में पहुंचा। संध्या हो गई थी। एक अपरिचित के दरवाजे पर रुकते हुए उसने पूछा– "क्या मैं यहां रात-भर के लिए विश्राम कर सकता हूं।"



गृहस्वामी ने जवाब दिया– "हां-हां, क्यों नहीं? लेकिन तुम्हें एक शर्त पूरी करनी होगी।"

"तुम्हें मेरे गांव के महापंडित के साथ शास्त्रार्थ करना होगा। यदि तुम जीत गए तो हम तुम्हें निश्चित धनराशि इनाम में देंगे। यदि तुम हार गए तो तुम्हें अपना सामान हारना पड़ेगा।" उस व्यक्ति ने कहा।



गृहस्वामी ने जवाब दिया– "हां-हां, क्यों नहीं? लेकिन तुम्हें एक शर्त पूरी करनी होगी।"

"तुम्हें मेरे गांव के महापंडित के साथ शास्त्रार्थ करना होगा। यदि तुम जीत गए तो हम तुम्हें निश्चित धनराशि इनाम में देंगे। यदि तुम हार गए तो तुम्हें अपना सामान हारना पड़ेगा।" उस व्यक्ति ने कहा।

"हां-हां, मुझे मंजूर है," कहता हुआ देवेन्द्र मुस्कराने लगा। उसे मालूम था कि शास्त्र का अध्ययन उसने पूरा कर लिया है। लेकिन अपने चेहरे पर उसने अंहकार का कोई भाव नहीं आने दिया। गांव के लोगों को कानोंकान खबर लगी। चांदनी रात थी। सब लोग खा-पीकर एक जगह इकट्ठे हो गए। उस गांव के महापंडित को भी बताया गया। उपस्थित लोगों को प्रथा के अनुसार दछिनी (सुपारी) और भुना हुआ मखाना दिया गया।

दोनों पंडित आमने-सामने बैठे। महापंडित सीना तानकर बैठे थे। धैर्य नहीं था। तुरंत ही उन्होंने शास्त्रार्थ प्रारंभ का एक वाक्य कहा– "सरपट सों"– बोलकर ऐसे विराजमान हुए मानो सारा समाज मूर्ख हो और सिर्फ वही पंडित हो। उन महान पंडित की वाणी सुन देवेन्द्र झा सोचने लगे। उन्होंने सारे शास्त्र पुराण पढ़ रखे थे। और कई ग्रंथ उन्हें कंठस्थ थे। लेकिन कहीं भी "सरपट सों" नहीं पढ़ा या सुना था। दर्शकगण दोनों पंडितों का मुंह बारी-बारी से देखते रहे। बहुत रात बीत गई लेकिन देवेन्द्र झा जवाब न दे सके। निर्णायकों ने कहा– "आप हमारे गांव के महापंडित से जीत नहीं सके। आपको सामान हार जाना होगा।" देवेन्द्र झा ने भी अपनी हार स्वीकार कर ली।

सुबह होने पर वे अपने घर के लिए चल दिए। गांव के बीच एक कुंए पर कुछ औरतें पानी भर रही थीं। एक ने उनकी ओर अंगुली दिखाते हुए दूसरी से कहा– "देखोजी, यही है वह पंडित, जो मेरे पति से कल रात हार गया। यह वाराणसी से पंडिताई पढ़के आया है। मेरा मालिक तो भैंस ही चराता है। फिर भी जीत गया।" सभी औरतें हंसने लगीं। एक ने कहा– "हंसो मत। वह शर्म से गड़ा जा रहा है।"

सचमुच देवेन्द्र झा शर्म से तो नहीं, परंतु आश्चर्य से अवश्य डूबे जा रहे थे। आश्चर्य भी दुःखद था।

हार-थक कर घर पहुंचे। उसे देख बड़े भाई की खुशी का ठिकाना न था। छोटा भाई पंडित बनकर लौटा था। लखिन्दर झा मूंछों पर हाथ फेर रहे थे। लेकिन भाई की उदासी उन्हें खटक रही थी। आखिर उन्होंने पूछा– "देवेन्द्र ! तुम उदास क्यों हो? तुम्हारा कोई सामान भी नहीं देख रहा हूं। आखिर हुआ क्या?"

देवेन्द्र क्या बोलते? अपने भाई की आशा पर कुठाराघात कैसे करते? उन्हें अपने भाई द्वारा लिखाए पत्र का अंश याद आ गया। उसमें लिखा था– "जब तुम पंडित बनकर लौटोगे, मैं अपने इलाके में शास्त्रार्थ करवाऊंगा। तुम्हारे विजयी होने पर मैं तुम्हें हाथी पर बैठाकर सारी मिथिला घुमाऊंगा। देखो, मुझे नीचे मत छोड़ देना। मुझे भी हाथी पर बैठा लेना। मैं उस घड़ी का इंतजार कर रहा हूं।"

आज वही भाई सामने खड़ा था। एक हारा हुआ पंडित। अपनी हार से दुःखी पंडित के रूप में। कहावत है– "अपनी हार और अपनी पत्नी की मार कोई किसी से नहीं कहता।"

"तुम्हें मेरी सौगन्ध है। ठीक-ठीक बताओ, हुआ क्या है?" लखिन्दर झा ने पूछा। देवेन्द्र झा ने सारा वृत्तांत कह सुनाया।

सब कुछ सुन लेने के बाद लखिन्दर झा ने कहा– "बस !इतनी-सी बात से दुःखी है। इसका जवाब तो मैं दे दूंगा। चलो, अभी चलता हूं। चलकर उस महापंडित को पछाड़ूं।" भाई का हाथ घसीटता हुआ चल दिया। दोनों भाई उस गांव में पहुंचे। उन्होंने पुनः शास्त्रार्थ की इच्छा जाहिर की। गांव के लोग तुरंत राजी हो गए। पहले की भांति सभा बैठी। दोनों महापंडित आमने-सामने बैठे। दोनों के चेहरों पर भाव था– "हम किसी से कम नहीं।" पंडित ने कहा– "सरपट सों।" लखिन्दर झा तपाक से बोल पड़े– "देखिए साहब !इनका सवाल बिल्कुल गलत है। आप ही सोचिए कहीं सरपट सों (भात को जल्दी-जल्दी निगलना) होता है? मैं कहता हूं यह शास्त्र को गलत बता रहा है। यह सबको ठगता आया है। आप सुने, सही श्लोक यों है–

"धमक धुइयां, धमक धुइयां
फटक फइयां, फटक फइयां
फटक फइयां, खदर-बदर
खदर-बदर, तब सरपट सों।"

लखिन्दर पंडित ने दो बार अपना श्लोक दुहराया। फिर उसकी व्याख्या की। पहले धान को कूटा (धमक धुइयां) जाता है। फिर उसको फटका (फटक फइयां) जाता है। फटकने के बाद उस चावल को खदकाया (खदर-बदर) जाता है। फिर सरपट सों (यानी खाना होता है)। श्रोतागण लखिन्दर पंडित की जयजयकार करने लगे। उन्हें माला पहनायी। देवेंद्र पंडित का सामान लौटा दिया। दोनों भाइयों की सादर विदाई की। रास्ते में लखिन्दर ने भाई से कहा– ''भाई ! मुकाबला बराबरी का ही होता है। कहां तुम शास्त्रों के पंडित और कहां वह भैसों का पंडित। बिल्कुल मेरी जोड़ी का है वह। तुम भला कैसे जीतते।'' देवेन्द्र अपने भाई के गले लग गया।

ठग विद्या

बुलाकी पंडित का बेटा शादी के लायक हो गया था। लड़की वाले रिश्ता लेकर आने लगे। स्वयं पंडित उनसे बात करते थे। लड़की वाले दुबारा आने का वायदा कर चले जाते। लेकिन फिर कभी नहीं आते। सरोवर सिंह बुलाकी पंडित के मित्र थे। उनसे यह बात छुप न सकी कि पंडितजी बेटे की शादी जल्दी करना चाहते हैं, साथ ही लड़की वालों के न लौटने से दुखी हैं। मित्र के नाते पंडितजी की मदद करना उनका फर्ज बनता था। वैसे भी गांव के बड़े तेज व्यक्ति माने जाते थे। थोड़ी बहुत अंग्रेजी भी पढ़ी थी। उन्होंने पंडितजी को सलाह दी– "जब कोई लड़कीवाला आए तो लड़के के विषय में मैं बात करूंगा। आप मुझे जरूर बुलवा भेजिए।"

पंडित ने हा भर दी। दूसरे ही दिन एक नाई आया। उसने कहा– "पंडितजी ! मेरे मालिक अपनी लड़की का रिश्ता आपके लड़के के साथ करना चाहते हैं। उन्होंने मुझे लड़के के बारे में पूरी जानकारी लेने भेजा है।"

पंडितजी ने सरोवर सिंह को बुलावा भेजा। सरोवर सिंह ने सिर पर पाग बांधी, छड़ी घुमाते पहुंचे। उन्हें लड़कीवाले की जगह केवल नाई को देख तकलीफ हुई। फिर भी कहा– "देखो, तुम अपने मालिक को जाकर बताओ कि लड़का 'कृषि विद्या विशारद' है। देखने-सुनने में कैसा है यह तुम स्वयं देख लो।"

नाई ने पूछा– "आपने क्या कहा मालिक? लड़का क्या है?"

"कृषि विद्या विशारद। कृषि विद्या विशारद।" सरोवर सिंह लड़के के पद की गरिमा के बोझ से ही गंभीर हुए जा रहे थे। नाई के पल्ले कुछ न पड़ा। उसने आग्रह किया–"मालिक !आप कागज पर लिख दीजिए। बाप रे !इतने बड़े पंडित ! मेरे मालिक को रिश्ता मंजूर ही समझिए।"

सरोवर सिंह ने कागज पर लिखकर दे दिया। नाई वापस गया। दूसरे दिन ही लड़कीवाले ब्राह्मण नाई, नौकर, साथ ही साथ अन्य भाई-बंधुओं को लेकर लड़के को देखने पहुंच गए। बुलाकी पंडित ने बड़े धूमधाम से उनका स्वागत किया। सरोवर सिंह ने उसी लहजे में कहा– "लड़का कृषि विद्या विशारद है।"

सब के सब आश्चर्य में डूबे थे। इतनी बड़ी उपाधि उन्होंने अब तक न सुनी थी। निश्चय ही लड़का बड़ा पंडित होगा। उन लोगों ने अपनी सुंदर एवं सुशील लड़की के लिए रिश्ता मंजूर कर लिया।

दूसरे महीने ही शादी की तिथि तय हुई। लड़कीवालों ने गांव-पड़ोस में लड़के की विद्वता का खूब ढिंढोरा पीटा था। बारात के स्वागत की धूमधाम से तैयारी हुई। लड़की को देने के लिए दान-दहेज भी बहुत इकट्ठा किया गया। पहले-पहल गांव में पढ़ा-लिखा दामाद आने वाला था। रामायण, महाभारत एवं अन्य बड़े-बड़े पोथी-पुराण लड़के को देने के लिए खरीदे गए।

लड़की की सखी-सहेलियां भी पंडित दूल्हे के सामने पेश होने की योजना बनाने लगीं। उन्हें भय था कि ऐसे विद्वान से कैसे हंसी-ठिठोली करेंगी। साली, सलहज (साले की पत्नी) अलग परेशान थीं।

बारात आई। शादी-ब्याह भी सम्पन्न हो गया। सुबह जवाईं बाबू(दामाद) को जलपान (नाश्ता) कराना था। घर का एक व्यक्ति बारातियों के पास गया। पूछा– "जवाईं बाबू जलपान क्या करेंगे?"

सरोवर सिंह ने जवाब दिया "चार सेर चूड़ा, दो हांडी दही, एक सेर चीनी, एक घोद केला, कुछ खाजा-मिठाई,



अचार वगैरह।" लड़की वाला हाथ जोड़े बोला– "और कुछ ?" "नहीं, जलपान जलपान ही होता है, वह भोजन थोड़े ही है।" सरोवर सिंह मूंछों से इत्र निकाल सूंघने लगे।

वह व्यक्ति दौड़ा हुआ घर गया। उसने सारी चीजें लेकर बारातियों के पास भेज दीं। लोगों को आश्चर्य हुआ। बारात के 50 लोग और इतना कम सामान जलपान में कैसे मंगवाया ? जलपान लेकर दो-तीन लोग आए। उन्होंने

देखा कि सारा जलपान केवल लड़के के सामने रख दिया गया। वह धीरे-धीरे सब खाता गया। जलपान लाने वालों ने कानाफूसी की। एक व्यक्ति दौड़ा-दौड़ा घर गया। बोला– "सारा सामान केवल दूल्हा ही खा रहा है। अन्य 49 लोगों के लिए भी उसी हिसाब से जलपान दीजिए।"

"हैं ...., घरवालों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। पढ़ा-लिखा दामाद इतना खाएगा ? उनका माथ ठनका। देखते-देखते जनवासे पर (जहां बारात ठहरती हैं) गांव के लोग इकट्ठे हो गए। किसी ने मजाक किया– "जमाई जी ! और कुछ ?"

दामाद डकारता हुआ बोला– "ना-ना, जलपान जलपान माफिक होता है।"

सब ने आंखों में बातें की। लड़की के पिता को जब खबर लगी तो वह सिर थामे बैठ गया। इतने बारातियों को क्या खिलायेगा ? उसके घर में जितना सामान था, सब एक शाम में ही खत्म हो गया। गांव वाले भी चिंतित हो गए। जहां एक ओर उन्हें अपनी इज्जत रखने की चिंता हुई, वहीं बारातियों से खीझ भी। गांव वालों के सहयोग से इज्जत तो रह गई लेकिन उन लोगों ने अपनी खीझ मिटाने की योजना बना ली। औरतों ने भी विचार किया। ज्यों ही लड़का मंडप में बैठा, किसी बूढ़ी औरत ने पूछा– "जमाईजी, आप कहां तक पढ़े हैं ?" दामाद तपाक से बोला– "मैं कुछ भी पढ़ा-लिखा नहीं हूं! मैं तो खेती-गृहस्थी करता हूं।"

जिसने सुना ठगा-सा रह गया। दरवाजे पर खड़े सभी लोगों को खबर लगी। सब दौड़े-दौड़े जनवासे गए। सरोवर सिंह को पकड़ा गया। सबने उन्हें लड़की वाले को ठगने की सजा में बेइज्जत करने की धमकी दी। सरोवर ने तटस्थ भाव से कहा– "आप लोग नाहक नाराज हो रहे हैं। मैंने आप लोगों को ठगा कहां ? मैंने आपसे कहा था लड़का 'कृषि विद्या विशारद' है। और वह है भी। 'कृषि' का अर्थ खेती-बाड़ी होता है। 'विद्या' मतलब विद्या और 'विशारद' का अर्थ अच्छी जानकारी रखने वाला। ठीक ही तो है। लड़का खेतीबाड़ी अच्छी तरह करता है।"

यह सुनकर लड़की वालों पर मातम छा गया। सिंदूरदान हो चुका था। लड़की को विदा तो करना ही था। बारातियों को तो जाते-जाते गांव वालों ने पूरा कबाछ (एक प्रकार की जंगली घास जिसे लगाने से शरीर बहुत खुजलाने लगता है) लगा दिया। वे रोते-चिल्लाते वापस भागे। लड़की को भी भरे मन से लड़के के साथ विदा कर दिया। लड़के ने दहेज की मांग की। गांव के किसी व्यक्ति ने कहा–

"भेल विवाह मोर करवा (करोगे) की।
धीया (बेटी) छोड़ और लेबा (लोगे) की।"

भूतों की मालगुजारी

अपने छोटे से गांव का सबसे गरीब व्यक्ति लाला बेहद बदनसीब। लक्ष्मी की कृपा न हुई तो घर की लक्ष्मी ललाइन (लाला की पत्नी) ने भी उन्हें प्यार नहीं किया। भला जिन्हें दो जून की रोटी भी नसीब न थी वे प्यार-मुहब्बत क्या खाक करते। कहावत है– "भूखे भजन न होई गोपाला, ले लो अपनी कंठी माला।"

ललाइन दिन-रात अपने भाग्य को कोसती रहती। लाला चुपचाप ललाइन को टुकुर-टुकुर ताकता हुआ एक चटाई पर बैठा रहता। एक दिन वह उसी चटाई पर बैठा धूप ताप रहा था। शरीर के अंदर अन्न की गर्मी तो थी नहीं, बाहर से ही गर्मी प्राप्त कर रहा था। वस्त्र के नाम पर उसके शरीर पर एक ही पतली धोती थी, जो अब धुलने लायक नहीं रह गई थी। उसी धोती को आधी कमर में बांध आधी से देह ढक रखी थी।

धूप चढ़ने लगी। बैसाख की गर्मी, लेकिन वह सिकुड़ा बैठा था। ललाइन जानती थी कि उसके लाख रोने-चिल्लाने का भी उसके पति पर कोई असर नहीं होता। वह सिर धुनती, गालियां बकती रहती, लेकिन लाला नहीं बदला। दिन-ब-दिन उसकी हालत खराब हो गई। लेकिन ललाइन भी चुप रहने वाली नहीं थी। उसे सबसे ज्यादा लाला की चुप्पी खलती थी। रोटी कमाने के लिए वह बिल्कुल हाथ-पैर नहीं चलाता था।

आज फिर सुबह-सुबह ललाइन ने हल्ला मचाना शुरू किया– "हाय राम, मां-बाप ने इसके साथ शादी करने बजाय मुझे नदी में डुबो क्यों न दिया। मैं क्या करूं। इसका तो बदन ही नहीं हिलता। यह मतसुन्न हो गया। लेकिन मैं रोऊं भी क्या, अंधा आगु रोई, अपना दीदा खोई।" फिर भी लाला चुप्प। तब उसने लाला का शरीर झकझोरते हुए कहा– "अरे, तुम जिंदा हो या मर गए। बुत की तरह निर्जीव पड़े हो।"

लेकिन यह क्या ? ललाइन आश्चर्यचकित रह गई,जब लाला को बड़ी फुर्ती से उठकर अपनी झोंपड़ी के अंदर प्रवेश करते उसने देखा। लाला अंदर गया। एक टिन की बडी कटोरी ले घर से बाहर निकल गया। गांव की पगडंडी पर ही थोड़ी दूर गया। कुछ क्षण ठिठका, फिर चला। गांव के दूसरे टोले में गया। वह दो-चार दरवाजों से गुजरा। लेकिन घर से जिस उद्देश्य से वह चला था, पूरा नहीं हुआ। वह कटोरा ले भीख मांगने निकला था। लेकिन भीख मांगना उसे आया नहीं।

एकाएक वह घर की ओर मुड़ा। अब उसकी चाल में तेजी थी। लम्बे-लम्बे डग रखता वह घर पहुंचा। उसने सोचा– "वह शहर जाकर पढ़ेगा और वहीं नौकरी करेगा। बचपन में अपने मां-बाप एवं पड़ोसियों से उसने कलम के चमत्कार की अनेक कहानियां सुनी थीं।

वह तेजी से झोपड़ी के अंदर घुसा। एक कोने में मिट्टी की एक खाली कोठी पड़ी थी। उसके ऊपर एक कलम और दवात रखी थी,जिसकी वह हर साल पूजा किया करता था। उसने कलम-दवात उठाई और झटके से बाहर निकल आया। ललाइन एक कोने में सिमटी बैठी थी। उसने देखा, लेकिन टोका नहीं। भगवान से प्रार्थना करने लगी– "भगवान उसे बुद्धि दो।"

दोपहर हो चुकी थी। जोरों की गर्मी थी। लाला कुछ दूर चलने के बाद बिल्कुल थक गया। परिस्थिति ने उसे मजबूर कर दिया था। फिर कोमल शरीर उसे जन्म से ही मिला था। वह एक घने पेड़ के नीचे बैठ गया। बैठने पर उसे अपनी थकावट का भान हुआ और वह वहीं हवा में लेट गया। लेटते ही उसे नींद आ गई।

देखते ही देखते लाला की हालत बदल गई। दो ही महीने में उसने दो और कमरे बनवाए, बुखारी बनवायी। फिर भी अन्न रखने को जगह नहीं मिलती थी। फालतू अन्न बेचकर वह अन्य सुख-सुविधा की वस्तुएं खरीदता। ललाइन के ठाठ का तो कहना ही क्या ? उसकी रंग-बिरंगी साड़ी, पैर की पाजेब, नाक में नथिया, गले में हंसुली देख पड़ोसिनें जलने लगीं। गांव के लोगों को भी लाला के भाग्य पर कौतूहल और ईर्ष्या होती।

लाला का पड़ोसी तेल पेलने का काम करता था। एक दिन उसने अपनी पत्नी को लालाजी के घर भेजा। उसने ललाइन से सब बातें सुन लीं। उसने घर आकर अपने पति से कहा– "सुनोजी, तुम भी क्यों नहीं अपना भाग्य आजमाते हो। मैं कल ही कहीं से एक कलम-दवात और कागज मांग कर ला दूंगी। तुम भी जाकर वैसे ही करना जैसे लाला ने किया। देखो, डरना मत। लाला होकर उसने इतनी हिम्मत की तो तुम भी कर लोगे। मुझे विश्वास है।"

घूरन साहू पत्नी के उकसाने पर तैयार हो गया। वह दूसरे दिन संध्या के समय उसी पीपल के पेड़ के नीचे आकर लेट गया। लेकिन उसे नींद कहां ? उसका शरीर तो भय से कांप रहा था। वह हिम्मत बटोर ही रहा था कि प्रेत मंडली आ धमकी। किसी को सोया देख उन्होंने चिल्लाते हुए पूछा – "कौन हो तुम।"

घूरन साहू का शरीर उस पीपल के वृक्ष के पत्ते के समान भय से थरथर कांप रहा था। उसने कांपते-कांपते कहा– "मैं दीवान हूं। तुमसे मालगुजारी वसूलने .... आ ... या... या ...या ... हूं।" इतना वह बड़ी मुश्किल से कह पाया। उसकी हालत देख प्रेतों को उसकी बात का विश्वास नहीं हुआ। प्रेतों के मुखिया ने एक घूंसा जड़ दिया। चोट लगते ही घूरन साहू एक ओर लुढ़क गया और उसके कई दांत टूट गए। वह संभल के उठा। बड़ी विनती की। अपने प्राणों की भिक्षा मांगी। अपनी जान के बदले वह कुछ भी देने को तैयार था।

प्रेतों ने कहा– "हम तुम्हारी जान नहीं लेंगे। लेकिन तुम्हें अपने अपराध के लिए जुर्माना देना होगा।" घूरन साहू और क्या करता, जुर्माना भरने के लिए तैयार हो गया। गिड़गिड़ाते हुए बोला– "हुकुम कीजिए ह...जू...र...र....र....।"

प्रेतों ने कहा– "हमें तुमसे कुछ नहीं चाहिए। तुम प्रतिदिन पांच सेर तेल लालाजी को दिया करना और कान खोलकर सुन लो, अपने जुर्माने में कोई कमी की अथवा लालाजी को छलने की कोशिश की तो हम तुम्हारे शरीर से खून पी जाएंगे।" उसे धक्का देते हुए वहां से भाग दिया। घूरन के घुटने छिल गए। दांत टूट गए थे। कमर में इतनी चोट लगी थी कि वह सीधे खड़ा नहीं हो पा रहा था। किसी तरह वह घर पहुंचा। उसकी पत्नी बेसब्री से इंतजार कर रही थी। पति की यह दशा देखकर सिर धुनते हुए बोली– "हाय, हमने दूसरे का हथियार चलाना चाहा था। भगवान को मंजूर न हुआ। जिसकी वंशी वही बजाये। हम तो कोल्हू के बैल ही रहेंगे।"

घूरन ने जब जुर्माने की बात बतायी तो उसकी पत्नी के प्राण सूख गए। हताश होकर बोली– "चौबे गए छब्बे बनने, बन के आए दूब्बे। घूरन ने उसे फटकारते हुए कहा– "अब चुप भी रहो। मैं तुम्हारी बात में आ गया था। दूसरे की नकल करने के लिए उसकी बुद्धि भी चाहिए।" घूरन भागा-भागा लालाजी के पास पहुंचा। और उनसे अपनी आपबीती सुनायी। लालाजी को घूरन पर दया आ गई। उसने प्रेतों के जुर्माने में कमी कर दी और कहा– "तुम केवल एक सेर तेल हर रोज दिया करना।"

गांव में यह बात तो फैल गई लेकिन असली राज नहीं खुला। सब लोग लालाजी की खुशामद करने लगे। लालाजी भोग-विलास के साथ-साथ धर्म-कर्म करना भी नहीं भूले। जी भर कर दान-दक्षिणा देते। उनके घर में दरबार-सा जमघट लगा रहता था।

एक दिन प्रेतों के पास उनका गुरु आया। लालाजी की ज्यादती उसे पसंद नहीं थी। उसने कहा– "आदमी ने भी भला कहीं प्रेतों पर शासन किया है। शासन के लिए ताकत चाहिए। मैं इसे बर्दाश्त नहीं कर सकता। मैं उस लाला को मजा चखा दूंगा।" एक दिन उसने कुत्ते का रूप बनाया और लालाजी की हवेली में घुस आया। काफी रात हो चली थी। लालाजी सोने जा रहे थे। उसने आंगन में कुत्ते को खड़ा देखा और उसे अपना पालतू कुत्ता समझकर कहा–

"सेतू, बहुत शैतान हो गए हो तुम, तुमने आज चौके में बहुत नुकसान किया। आज मैं तुम्हारी मरम्मत करूंगा।"

प्रेतों के गुरु का नाम भी सेतू था। लालाजी द्वारा अपना नाम पुकारे जाने पर उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसने सोचा लाला अवश्य पहुंचा हुआ व्यक्ति है, जिसने मेरा नाम तक जान लिया। वह अपने असली रूप में आकर लालाजी के पांव पर गिर गया और क्षमा-याचना की। अपने पांव पर प्रेत को गिरा देख लालाजी को आश्चर्य हुआ। लेकिन प्रेतों के गुरु ने स्वयं सब भेद खोल दिया। लाला को एक बात सूझी। उसनें कहा– "मैं तुम्हें छोड़ दूंगा। लेकिन प्रतिदिन रात को आकर तुम्हें प्रेतों द्वारा भेजा गया गेहूं पीसना होगा।"

जान बची लाखों पाए। प्रेतों के गुरु ने शर्त मान ली। दिन बीतते देर नहीं लगी और लालाजी लखपति हो गए। ललाइन अपने भाग्य की सराहना करती। नौकर-चाकरों की फौज के रहते हुए भी वह हर रात को लालाजी के पांव घंटों दबाती और उनकी बुद्धि की प्रशंसा करती और कहती– "भगवान सबके दिन मेरी तरह ही फिरायें। तुम इतने बुद्धिमान हो, मुझे पता न था। मैं बेकार तुम्हें गालियां देती थीं।" लालाजी प्रफुल्लित होकर कहते– "रानी ! मेरी नहीं, कलम की शक्ति का बखान करो। मेरी कलम पर उस दिन साक्षात् महाराज विराजमान थे।"

नेवला भाई

छपरा जिले के किसी गांव में एक व्यापारी रहता था। उसका कारोबार बड़ी तेजी से चल रहा था। किसी बात की कमी न थी। सात पत्नियां थीं। नौकर-चाकर से घर भरा रहता। लेकिन उसके कोई संतान न थी। वह बड़ा दुखी रहता। उसने देवी-देवताओं की मनौतियां मानी, पूजा-पाठ करवाया। लेकिन उसके घर झुनझुने का कोई प्रबंध न हो सका। नतीजा यह हुआ कि धीरे-धीरे अपने व्यापार से भी उसे अरुचि होने लगी। एक दिन वह चिंताग्रस्त बैठा था। इतने में वहां एक फकीर आया। व्यापारी की चिंता उससे छुपी न रह सकी। उसने पूछा– "महाराज !तुम धन-धान्य से पूर्ण हो। लेकिन तुम्हारे ललाट पर चिंता की रेखा क्यों है ?"

व्यापारी ने बड़े उदासीन भाव से कहा– "इस राजपाट को भोगने वाला भी कोई चाहिए। मेरी कोई संतान नहीं है।"

फकीर ने थोड़ा सोचते हुए कहा– "मैं तुम्हें एक उपाय बताता हूं।"

"बहुत उपाय कर चुका हूं महाराज। मान-दान, पूजा-पाठ सब किया-कराया बेकार गया।" व्यापारी ने लम्बी सांस भरते हुए कहा।

"तुम मेरी मानो। तुम्हें अवश्य पुत्र की प्राप्ति होगी। तुम रविवार के दिन नहा-धोकर किसी बगीचे में जाना। किसी आम के पेड़ में जहां सात आम एक गुच्छे में लगे हों, तुम एक ही झटके (डंडे के प्रहार) से उसे तोड़ लेना। सातों पत्नियों को एक-एक आम खिलाना। नवें मास ही तुम्हें सात पुत्रों की प्राप्ति होगी।" यह बताकर वह फकीर चला गया।

व्यापारी बैठा सोच रहा था। तभी बड़ी पत्नी वहां आ गई। उसने पूछा–"क्या सोच रहे हो ?" व्यापारी ने फकीर की सारी बात बता दी। पत्नी ने कहा .... "इसमें सोचना क्या है ? अगले रविवार को यह भी कर के देखो।"

रविवार को व्यापारी नहा-धोकर बगीचे में गया। वहां से सात आम तोड़ लाया। बड़ी पत्नी को बुलाकर आम देते हुए कहा– "देखो जी !कोई छूट न जाये। मेरी सब पत्नियों को एक-एक आम दे देना।" बड़ी रानी ने कहा– "तो सब मैं ही खा जाऊंगी ? तुम्हें मुझ पर विश्वास क्यों नहीं होता ?"

पत्नी अंदर गई। अन्य सब पत्नियों को एक-एक आम दिया। छोटी पत्नी चौके में काम कर रही थी। छोटी होने के कारण घर में सबसे ज्यादा काम उसे ही करना पड़ता था। व्यापारी उसे ज्यादा प्यार करता था। इसलिए अन्य सौतें उससे जलती थीं। बड़ी सौत ने कहा– "अरे, मैं कब से आम लिए खड़ी हूं। तुम लेती क्यों नहीं ?"

छोटी ने कहा– "देखो !अभी मेरे हाथ गंदे हैं। तुम कोठी के मोरा पर रख दो। मैं काम से निपटकर खा लूंगी।"

बड़ी रानी आम को कोठी के मोरा पर रखकर झमक कर बाहर चली गई। वहीं कहीं एक नेवला छुपा बैठा था। उसने पका आम देख झट उसे जूठा कर दिया।

छोटी दिन भर काम करती रही। आम खाना ही भूल गई। रात को सोते समय व्यापारी ने पूछा– "तुमने आम खाया?"

"हाय राम !मैं तो भूल ही गई।" कहती हुई बिछावन से बाहर निकल आई। चौके में गई। वहां आम पड़ा था। उठाकर उसे अंधेरे में ही खा कर सोने चली गई।



फकीर की बात सच निकली। सातों पत्नियां गर्भवती हो गईं,व्यापारी की खुशी का ठिकाना न था। वह रानियों की सुख-सुविधा का ध्यान रखता। नवें मास उसकी छः पत्नियों से छः लड़के हुए,लेकिन सातवीं पत्नी को एक नेवला बच्चा हुआ। व्यापारी को यह खबर दाई ने दी। वह बहुत दुखी हुआ। करना क्या था? सब विधि का विधान मान वह

शांत हुआ। दाई के मार्फत छोटी रानी को खबर भिजवायी– "तुम चिंता मत करो। भगवान उसी से कोई करामात दिखाएंगे।"

छोटी रानी बहुत दुखी थी। लेकिन सबके समझाने-बुझाने से वह कुछ आश्वस्त हुई। उसकी अन्य सौतें अपने-अपने सोरघर में थीं। यह खबर सुनकर उन्हें खुशी हुई। सब की सब छोटी सौत से जलती थीं।

बच्चे बड़े होने लगे। व्यापारी को जब कभी समय मिलता अपने बच्चों से खेलने लगता। वह नेवले को भी प्यार करता। गोद में बैठाता। एक दिन व्यापारी नेवले को गोद में बैठाये था और अन्य लड़के नीचे खेल रहे थे। इसी बीच बड़ी रानी आ धमकी। नेवले को उठाकर आंगन में फेंकते हुए बोली– "अपने लड़के से मन भर गया। जानवर के बच्चे से खेलते हो? छिः छिः कोई देखेगा तो क्या कहेगा?" आंगन में गिरने के बावजूद नेवले को कोई चोट नहीं लगी। वह तो भाग गया लेकिन व्यापारी को बड़ा दुख हुआ। उसने कहा– "यह कोई जानवर का बच्चा नहीं है। इसे भी तो हमारी रानी ने ही जन्म दिया है।"

इसी तरह के कई अवसर आए। अक्सर छोटी रानी को अपने बेटे के लिए सौतनों का उलाहना सुनना पड़ता। वे सदा उसे दुत्कारती रहतीं। पर छोटी रानी सब बर्दाश्त करती रहती थी।

सेपनेडरा (नेवला) भी अन्य भाइयों की तरह ही खिलौने मांगता और पढ़ना चाहता। छोटी रानी हमेशा उसे डांट देती। कहती– "तुम यह सब लेकर क्या करोगे?"

जब कभी सब भाई बगीचे जाते तो वह भी साथ चला जाता। वह सबसे पहले पेड़ पर चढ़कर पके-पके फल सब भाइयों के लिए गिराता। सब भाई उसे प्यार करने लगे। जब कभी वे बाहर निकलते सेपनेडरा को अवश्य साथ ले जाते।

धीरे-धीरे वे जवान हो गए। एक दिन व्यापारी ने उन्हें पास बुलाकर कहा– "अब मैं बूढ़ा हो रहा हूं। तुम लोगों को भी कोई रोजगार करना चाहिए। क्यों नहीं तुम लोग बाहर जाकर दुनिया देखते? कुछ कमाई-धमाई भी होगी। अक्ल भी आएगी।"

सभी भाई बाहर जाने की तैयारी करने लगे। सबों के लिए पाक-पकवान, खजूर, नीमकी, ठेकुआ बनने लगा। सेपनेडरा को भी गंध लगी। उसने अपनी मां से कहा– "मैं भी बाहर जाऊंगा।" उसकी मां झल्लाते हुए बोली– "तू क्या कमाने जायेगा? मेरा तो करम ही फूटा हुआ है।"

लेकिन सेपनेडरा अपनी जिद पर डटा रहा। उसकी मां ने भी एक पोटली में ठेकुआ, खजूर, सत्तू आदि बांध दिया।

छह भाई आगे-आगे चले। कुछ दूर जाने पर एक बगीचे में वे बैठकर आराम करने लगे। जिन पेड़ों की छाया में वे बैठे थे, उनमें पके-पके आम लगे थे। पके आम देखकर उनके मुंह में पानी भर आया। एक भाई ने कहा– "अभी नेवला भईया होता तो आम खिलाता।"

पेड़ पर से आवाज आई– "मैं यहां हूं।" सबके आश्चर्य का ठिकाना न था, जब उन्होंने पेड़ पर सेपनेडरा को आम कुतर-कुतर कर खाते देखा।

उन लोगों ने आम गिराने के लिए उससे आग्रह किया। नेवला पके-पके आम खुद खाता था और उसकी गुठली और कुछ कच्चे आम नीचे गिरा देता। भाइयों को गुस्सा आया। उन्होंने उसे मारने की योजना बनायी। लेकिन नेवला उनके हाथ नहीं लगा। वह आगे-आगे भागता गया। रास्ते में वैसे ही कई बगीचे मिले। जहां अनेक सुंदर और मीठे फल लगे थे। नेवला उन्हें ललचा-ललचाकर खाता जाता।

एक जगह सभी छह भाई रुके। अपनी पोटली से सत्तू निकालकर खाया और आराम करने लगे। उन्हें नींद आ गई। वे एक पेड़ के नीचे सो गए। आसपास जंगल-झाड़ था। नेवला वहीं चक्कर काट रहा था। उसने दो विषैले सांप आते देखे। वह अपने भाइयों को बहुत प्यार करता था। ज्यों ही सांप सोये हुए लड़कों की तरफ बढ़े नेवला उन पर झपटा। कुछ देर तक तो लड़ाई होती रही। अंत में उसने दोनों सांपों को मार दिया। वह भी थककर वहीं सो गया। कुछ देर

बाद सभी भाइयों की नींद खुली। उन्होंने मरे हुए सांप और थके हुए नेवले को देखा तो सारी परिस्थिति का अनुमान लगा लिया।

उन्होंने नेवले को बड़े प्यार से उठाया और अपने साथ कर लिया। कुछ दूर जाने पर एक कुंआ मिला। यहां एक बूढ़ी औरत पानी भर रही थी। नेवला उसके इर्द-गिर्द चक्कर काटने लगा और बोला– "मौसी !पांव लागी।" बुढ़िया चौंक गई। इधर-उधर देखा, वहां कोई न था। नेवला फिर बोला– "मौसी पांव लागी।" बुढ़िया बोली– "कौन मुझे मौसी कहता है? मेरी तो कोई बहन नहीं थी।"

"अरी मौसी !तुम्हारी शादी के बाद मेरी मां का जन्म हुआ था। तुम शादी के बाद नेहर गई ही नहीं। लेकिन मेरी मां तुम्हें सदा याद करती है।" उसने झटपट अपने पीठ पर रखी पोटली खोलते हुए कहा– "यह देखो, तुम्हारी बहन ने तुम्हारे लिए सनेस (उपहार) भेजा है।" उसने इतनी मीठी-मीठी बातें की कि बुढ़िया ने उसे अपनी बहिन का पुत्र मान लिया। बुढ़िया की कोई संतान नहीं थी। वह उसे पाकर बहुत खुश हुई। घर ले जाकर आवभगत की। नेवला आराम से रहने लगा। वह प्रतिदिन बुढ़िया के लिए मीठे-मीठे फल लाता। एक दिन उसने अपनी मौसी से कहा– "मौसी !मेरी कहीं नौकरी लगा दो। कब तक तुम्हारा खाता रहूं।" बुढ़िया ने कहा– "खबरदार, जो कभी ऐसी बात बोले। क्या मैं तुम्हें पराई लगती हूं? मेरे पास क्या कमी है जो तुम नौकरी करोगे?"

बात ही बात में बुढ़िया ने नेवले को अपना खजाना दिखा दिया। उसका पति बहुत बड़ा व्यापारी था। वह बहुत-सा रुपया-पैसा व मुहर-अशर्फी छोड़ गया था जिन्हें बुढ़िया ने अपने घर की दो कोठरियों में भर रखा था। नेवला यह सब सुनकर बड़ा खुश हुआ। बुढ़िया ने कहा– "बेटा !यह बात किसी से कहना मत। मैं दूसरों के सामने गरीब बनी रहती हूं। घर के सामने इसीलिए एक कानी घोड़ी पाल रखी है। किसी को मेरे धन की जानकारी नहीं है। जानकारी होने पर मुझ अबला को कोई जिंदा भी नहीं छोड़ेगा।" नेवले ने कहा– "मौसी !मैं इतना मूर्ख नहीं हूं।"

सेपनेडरा को अपनी मां से मिले बहुत दिन हो गए थे। वह मां से बहुत प्यार करता था। वह जानता था कि उसकी वजह से मां का कितना तिरस्कार होता था।

कार्तिक पूर्णिमा आने वाली थी। बुढ़िया ने कहा– "बेटा !मेरी सब पड़ोसिनें गंगा-स्नान के लिए घाट जा रही हैं। मैं अकेली होने के कारण पहले कहीं तीर्थ जाती नहीं थी। पर इस बार तो तुम घर में हो, इसीलिए गंगा-स्नान करना चाहती हूं।" नेवले ने कहा– "हां-हां, जरूर करो। आखिर मैं किस दिन काम आऊंगा।"

बुढ़िया चली गई। सेपनेडरा इसी ताक में था। उसने बुढ़िया की सारी धरोहर रुपया-पैसा कानी घोड़ी को खिला दिया। गंगा स्नान से लौटने पर बुढ़िया की उसने खूब सेवा की। उछल-उछल कर उसके पैर दबाए। बुढ़िया की थकान तो नहीं मिटी पर नेवले का स्नेह भाव पाकर वह गद्गद् हो गई।

सुबह होने पर नेवले ने बुढ़िया से कहा– "मौसी, मैं अब घर जाऊंगा।"

बुढ़िया यह सुनकर बहुत दुखी हो गई। लेकिन सेपनेडरा ने अपनी मां की बेचैनी की याद दिलाकर बुढ़िया को राजी कर लिया। बुढ़िया बोली– "ठीक है बेटा !लेकिन मैं विदाई में तुम्हारे लिए कौन-सा अंगरखा-धोती बनवाऊं? क्या करूं?" सेपनेडरा तपाक से बोला– "मौसी, मुझे तो तुम्हारी कानी घोड़ी पसंद है। वही दे दो।"

बुढ़िया इतना घटिया उपहार देना नहीं चाहती थी। लेकिन नेवले की जिद के आगे उसे झुकना पड़ा। उसी घोड़ी पर बैठा कर रोते-रोते उसने अपने बहिन-पुत्र को विदा किया।

नेवला घोड़ी पर सवार हो घर पहुंचा। एक दिन पहले उसके बड़े भाई लोग भी लौटे थे। उनकी माताएं बहुत दुःखी थीं क्योंकि उनके लड़के खाली हाथ लौटे थे। वे केवल एक-एक घोड़ा साथ लाए थे।

नेवले की मां को अपने बेटे के लौटने की आशा भी न थी। उसने सोचा था उसका बेटा कहीं मर गया होगा या जंगलों में भटक रहा होगा। उसने अपनी सौतों को समझाया "क्यों दुःखी होती हो। बेटे लौट आए, यही क्या कम है। बेटे रहेंगे तो धन कमा ही लेंगे। कहावत है– जान है, तो जहान है।"

इसी बीच उसकी दाई दौड़ी-दौड़ी आयी, बोली– "छोटी मालकिन, आपका बेटा एक कानी घोड़ी पर सवार हो आया है।" छोटी रानी जब तक बाहर निकले, नेवला अंदर आ गया। बोला– "पांव लागी मां। मां-मां, घर खाली कर" की उसने रट लगा दी। उसकी मां भौचक थी। वह बेटे के कहने का आशय समझ नहीं पा रही थी।

नेवला इधर-उधर दौड़ रहा था। उसके पांव धरती पर नहीं पड़ रहे थे। उसकी मां चुपचाप खड़ी थी। अंत में वह अपनी मां की साड़ी पकड़कर घोड़ी के पास खींच ले गया। घोड़ी को एक डंडा मारा। घोड़ी के मुंह से बहुत सारी अशर्फियां गिरीं।

उसकी मां के मुंह से चीख निकल गई– "हाय दईया। यह क्या है?" नेवले ने घोड़ी को फिर मारा और फिर ढेर-सी अशर्फियां एवं रुपये गिरे। मां समझ गई उसने कोठरी खाली की फिर टोकरी में उठा-उठा कर रुपये एवं अशर्फियां कोटरी में भरने लगी।

नेवले की बड़ी माताएं आंखें फाड़े देख रही थीं और अपने भाग्य को कोस रही थीं। उसने दूसरी माताओं को पांच-पांच अशर्फियां बेना (उपहार) के रूप में दीं। उसके बड़े भाई उसे फुसलाने लगे। उनकी आंखें उस कानी घोड़ी पर लगी थीं। उन्होंने कहा– "नेवले भाई! तुम हमारे छहों घोड़े ले लो और हमें यह घोड़ी दे दो।"

नेवले ने काफी आनाकानी की। लेकिन अंत में यह जान कर कि उसकी घोड़ी के पेट में अब कुछ नहीं बचा है, घोड़ी को भाइयों के घोड़ों से बदल लिया। उसने बड़े नाटकीय ढंग से अपनी घोड़ी से विदा ली और बोला– "मेरी प्यारी घोड़ी! तुमने मेरी बड़ी सेवा की। आज तेरी बदौलत में लखपति हूं। अब तुम मेरे भाइयों की भी सेवा करो।"

फिर अपने भाइयों से बोला–"देखो भाइयों यह मेरी बहुत प्रिय घोड़ी है। इसे ठीक से खिलाना-पिलाना होगा।" घोड़ी को अपने खूंटे से खोलते हुए सेपनेडरा आंसू पोंछ रहा था और बेचैनी दिखा रहा था।

छह भाई बहुत बेसब्र हो रहे थे। उन्होंने घोड़ी को ले जाकर तुरंत पीटना शुरू कर दिया। घोड़ी के पेट से दो अशर्फियां गिरीं। उसके बाद वे उसे पीटते रहे। घोड़ी मरणासन्न हो गई। लेकिन कुछ बाहर नहीं निकला। उन्होंने अपना माथा ठोक लिया। वे भागे हुए नेवले के पास गए और बोले– "तुम अपनी घोड़ी लौटा लो, और हमारे घोड़े वापस करो?" पर नेवले ने उनकी एक न सुनी। वे लोग पंच बुला लाए। नेवला पंच के सामने बोला– "इन लोगों ने घोड़ी को अच्छी तरह खिलाया-पिलाया नहीं। उल्टे मार-मार कर उसका कचूमर निकाल दिया। मैंने जैसी घोड़ी दी थी वैसी ही वापस लूंगा।"

पंचों ने भी उसके हक में फैसला किया। उन्होंने उसके भाइयों को सलाह दी– "तुम लोग लड़ाई-झगड़ा छोड़ो। नेवला तुम्हारा ही छोटा भाई है। उसके पास अपार धन-दौलत हो गई है। लेकिन वह कोई व्यापार नहीं कर सकता। तुम लोग उसे मालिक बना दो और खुद व्यापार करो।" पंचों के फैसले और उनकी सलाह को उन लोगों ने स्वीकार किया।

नेवला अब मालिक बन गया। उसने सब भाइयों एवं बड़ी माताओं के काम का भी बंटवारा कर दिया। अपनी मां को आराम करने की सलाह दी। उनका व्यापार तुरंत ही चमक उठा।

सब्ज परी

सौखी राय के घर शादी के बीस वर्ष बाद एक पुत्री लक्ष्मी का जन्म हुआ। लक्ष्मी के आगमन के साथ ही खेत, खलिहान एवं बथान में भी लक्ष्मी विराजने लगीं। लेकिन सौखी राय अपनी पुत्री का नाम लक्ष्मी नहीं रखना चाहते थे। उनकी बहन नगीना अपनी भतीजी को देखने आई। भाभी की गोद भरी देख उसका मन खुशी से भर गया। उसने अपनी भतीजी का नाम 'सब्ज परी' रखा। एक दो बार उसने पड़ोसिनों के सामने ही 'सब्ज परी' कहकर पुकारा। सभी औरतें बोल उठीं, "सचमुच कितनी सुन्दर है। बिल्कुल परी लगती है।"

नगीना को जैसे कुछ सूझ गया। वह अपनी भतीजी पर थूकती हुई बोली, "छीः छीः। यह तो चुल्हिया है, चुल्हिया। कौन कहता है कि यह सब्ज परी है?"

झटपट कपड़े में लपेट, घर के अंदर ले गई। उसकी मां बोरसी (आग रखने की कड़ाही) ताप रही थी। नगीना घबराई सी बोली, "भाभी ! जल्दी से बबुनी की नजर उतार दे। बगल की औरतें आई थीं। उनमें छाजन वाली डाइन बुढ़िया भी थी। वह इसे परी कह रही थी।"

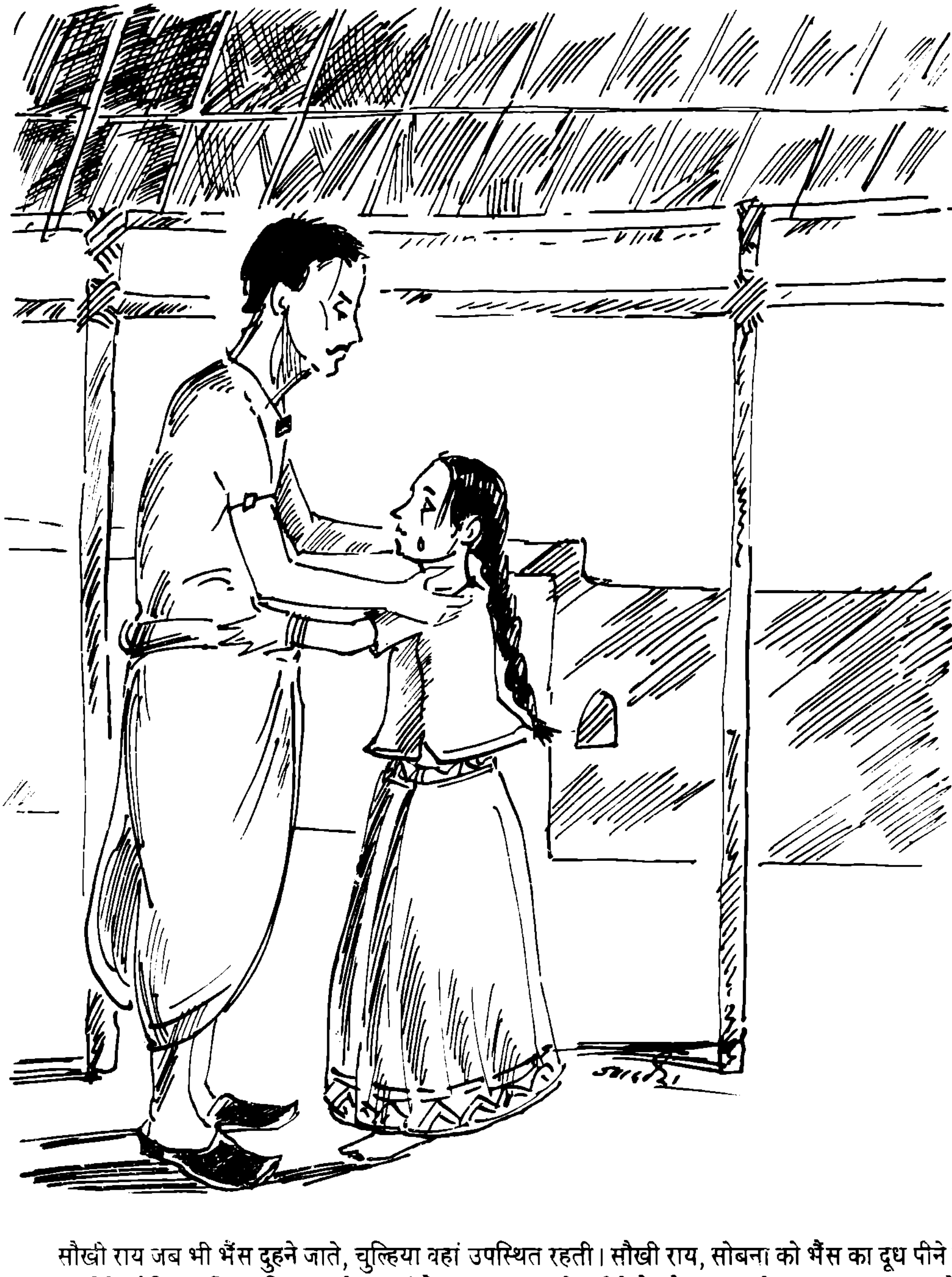
उसकी मां राई-मिरची से नजर उतारने लगी। तब से नगीना उसे 'चुल्हिया' ही बुलाने लगी। उसके जिंदा रहने के लिए उसने एक और टोटका किया। बच्ची को चूल्हे के मुंह के अंदर घुसा कर ऊपर से निकाल लिया।

अपने ससुराल वापस जाते वक्त उसने भाभी से कहा, "भाभी ! इसका नाम तो सब्ज परी ही रहेगा। लेकिन आप लोग इसे अभी 'चुल्हिया' कह कर ही पुकारिए। जी-मर कर जब बारह वर्ष की हो जाएगी तब बाबा वैद्यनाथ को भैंसा चढ़ाकर इसका नाम सब्ज परी रख दीजिएगा।"

चुल्हिया बढ़ने लगी। आठ साल की हुई तो अपने ननिहाल गई। साल भर बाद ननिहाल से लौटते समय उसे नानी ने दूध पीने के लिए एक भैंस दी। चुल्हिया बहुत खुश थी। गांव में सबको अपनी भैंस की कथा कहते न अघाती। साल भर बाद भैंस को बच्चा होने वाला था। चुल्हिया की दादी ने कहा, "इस बार यदि भैंस का पाड़ा हुआ तो इसे ही चढ़ौना चढ़ा देंगे।" चुल्हिया का मन बड़ा दुःखा। वह चढ़ौना का अर्थ जानने के लिए अपनी दादी के पीछे पड़ गई। छोटी बच्ची को यह बात अच्छी नहीं लगी कि उसकी जिंदगी की रक्षा के लिए भगवान को दूसरे के बच्चे की जिंदगी दी जाए। कुछ बोल न पाई। दस वर्ष की बच्ची क्या तर्क करती?

भैंस ने बच्चा दिया। बच्चा पाड़ा ही था। चुल्हिया बच्चे के पास ही बैठी रहती। वह खाना-पीना भी भूल गई। बड़े ध्यान से भैंस के बच्चे को देखती और अपने नन्हें हाथों से सहलाती। जब उसके पिताजी बच्चे को भैंस का दूध पिलाने उठाते, चुल्हिया उन्हें सहारा देती। पहले दूसरे दिन बच्चे को चलने में कठिनाई हो रही थी। सौखी राय बच्चे को उठाते पर वह गिर-गिर जाता था। चुल्हिया को बड़ी दया आई। उसने बच्चे को गिरने से रोकना चाहा। लेकिन यह क्या ! उसके पिता के आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उन्होंने चुल्हिया को भैंस के बच्चे को उठाए देखा। वह बच्चे को उठाकर स्वयं डगमगाती अपने बापू के पास ले गई। फिर क्या था, सुबह शाम बच्चे को उठाने-बिठाने लगी। दो दिन बाद बच्चा चलने लगा फिर भी चुल्हिया दिन में दो-तीन बार उसे अपनी गोद में उठाए बिना न मानती।

उसकी मां चुल्हिया को मनाती रही थी कि वह भैंस के बच्चे के पास जाना छोड़ दे। चुल्हिया ने उसका नाम सोबना रखा। सोबना दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा था। छः महीने का हो गया। फिर भी चुल्हिया उसे उठाती रही। सबको आश्चर्य होता कि ग्यारह साल की लड़की कैसे इतने बड़े सोबना को उठा लेती है ! आस-पड़ोस के लोगों में भी चर्चा होती। सब इसे भगवान की कृपा मानते। आखिर मनौती का पाड़ा था।



सौखी राय जब भी भैंस दुहने जाते, चुल्हिया वहां उपस्थित रहती। सौखी राय, सोबना को भैंस का दूध पीने से तुरंत हटा देते। लेकिन चुल्हिया जिद्द करती "बापू! भैंस का दूध हम लोग पीते हैं और उसका बेटा घास-फूस खाता है। इसे भी अच्छी तरह मां का दूध पीने दीजिए न?"

सौखी राय की बेटी के आगे एक न चलती। इतना ही नहीं, चुल्हिया सोबना से ही पूछती "सोबना और पीना है तुझे अपनी मां का दूध?" सोबना के सिर हिलाने पर ही दूध छुड़ाती। उसे पूरा विश्वास था कि सोबना उसकी भाषा समझता है। तभी तो उसके पास बैठी घंटों बातें करती। वह अपने घर की बातें, सहेलियों की बातें सब सोबना को सुनाती रहती।

एक दिन सौखी राय ने बेटी को बड़े प्यार से कहा "बेटी ! मेरी एक बात मान। मुझसे उस पाड़े को भैंस का दूध पिलाने के लिए जिद्द मत कर। पाड़े को कोई भैंस का दूध नहीं पिलाता। दूध बच्चे के मुंह में लगा, केवल चार पांच चभक्का (मुंह चलाने को कहते हैं) लगाने देते हैं। जब भैंस के थन में दूध आने लगता है, तभी बच्चे को हटा देते हैं। पाड़ी (भैंस की बेटी) को तो थोड़ा दूध पिलाते भी हैं, पर पाड़े को बिल्कुल नहीं।"

चुल्हिया पूरी बात ध्यान से सुनती रही। थोड़ी-सी गंभीर मुद्रा में बोली, "बापू ! उसके बच्चे को क्यों ठगते हैं लोग? उस की मां का दूध सब पिएं और वह घास खाए? मैं तो सोबना को पूरा दूध पिला दूंगी। मैं नहीं पिऊंगी, और क्या?"

चुल्हिया रोज सोबना के पास पहुंच जाती। उसकी मालिश करना, उसका गोबर उठाना, नहलाना और अपनी गोद में उठाए इधर-उधर करना उसका नियम-सा बन गया था। सोबना भी चुल्हिया की संगति का आनंद लेता था। एक दिन चुल्हिया गांव के ब्रह्मस्थान पर हुए अष्टजाम को देखने गई। उसे लौटने में देर हुई। सोबना लगातार चुकरता (बोलता) रहा। सौखी राय ने घास का एक टोकरा उसके सामने रखा। सोबना ने उसे उलटा दिया। सौखी राय पानी ले कर आये, सोबना ने बाल्टी भी पलट दी और लगातार चुकरता रहा। वह उधर ही मुंह उठाकर चुकरता। जिधर चुल्हिया गई थी। चुल्हिया ने आते ही उसे प्यार किया, टहलाया। सोबना चुप हो गया।

सोबना दो साल का हो गया पर चुल्हिया से उसकी दोस्ती न टूटी। वह उसे छोड़ कहीं गई भी नहीं। अब तो आए दिन पड़ोस के गांव वाले भी सौखी राय के दरवाजे पर मेला-सा लगा देते जब चुल्हिया सोबना को उठाये रखती। चुल्हिया के मां बाप को यह अच्छा न लगता। दोनों चुल्हिया को समझाते, "बेटी ! अब तुम बड़ी हो रही हो। सोबना का भी वजन बढ़ रहा है। तुम उसे मत उठाओ।"

"मुझे तो भारी नहीं लगता मां।" कहती हुई वह बड़ी आसानी से सोबना को उठाकर मां को दिखाती।

एक दिन नगीना फिर मैके आई। भतीजी बड़ी हो गई थी। बुआ भतीजी में बड़ा स्नेह हो गया। बुआ चुल्हिया का सोबना के साथ व्यवहार देखकर बहुत दुःखी हुई।

एक दिन दोनों ननद-भाभी बातें कर रहीं थीं। "भाभी ! लड़की जात को ऐसे स्वतंत्र छोड़ना अच्छा नहीं। आप उस पर थोड़ी सख्ती बरतिए," ननद ने कहा।

"क्या करूं बबुनी? उस सोबना को यह छोड़ ही नहीं सकती। अब तो पड़ोसी गांव के लोग भी आकर भीड़ लगाए रहते हैं। मुझे बड़ा खराब लगता है बेटी का तमाशा बनना।"

नगीना ने बीच में टोका—"अरी भाभी ! मुझे एक बात याद आ गई। मैंने कहा था न कि बाबा को भैंस चढ़ौना चढ़ाना है? आप भूल गई क्या?"

"भूली नहीं। इसी पाड़े को चढ़ाना है, लेकिन चुल्हिया माने तब तो।" भाभी ने बहुत धीरे से कहा, "कहीं चुल्हिया न सुन ले।"

चुल्हिया कान लगाए सारी बातें सुन रही थी। भागती हुई बथाने को गई। भैंस बैठी पागुर (खाने के बाद मुंह चलाना) कर रही थी। चुल्हिया ने धीरे से चुगली लगायी, "तुम्हे पता है, मेरी मां और बुआ मिलकर तुम्हारे बेटे को मारने की बात कर रही हैं। इसी दशहरे में भगवान को चढ़ौना चढ़ायेंगे। तुम कैसे रहोगी अपने बेटे के बिना?"

कहते-कहते रो पड़ी। उसने देखा भैंस की आंखों से भी आंसू निकल रहे थे। उसके साथ बैठ वह भी रोती रही। वह अपने बापू की प्रतीक्षा में थी। शाम को बापू के लौटने पर उसने शिकायत की। बापू ने कहा, "बेटी ! तुम्हें अपनी मां की बात माननी चाहिए।"

"ठीक है। लेकिन मेरी भी एक शर्त है।" चुल्हिया ने कहा। सौखी राय ने पूछा, "क्या शर्त है बोलो।"

"जब तक मैं सोबना को उठा सकती हूं तब तक आप इसे चढ़ौना न चढ़ाएं। जिस दिन मैं इसे उठा न पाऊंगी, मुझसे छीन लीजिएगा।"

सौखी राय ने बात मान ली। लेकिन अभी तक तो बड़ी आसानी से चुल्हिया सोबना को उठाये जा रही थी। नगीना ने बहुत मेहनत से चुल्हिया को अपने साथ ससुराल ले जाने को राजी किया। चुल्हिया बुआ की बात टाल न सकती थी। उसका ध्यान सोबना में ही लगा रहा। बुआ ने एक सप्ताह तक रोक लिया।

चुल्हिया घर लौटते ही सोबना के पास भागी। उसे प्यार किया। देर से लौटने के लिए क्षमा मांगी। लेकिन यह क्या? उसने लाख कोशिश की, सोबना को उठा न सकी। रोती हुई बापू के पास गई, "बापू !यह आप लोगों ने क्या कर दिया। मुझसे सोबना उठता ही नहीं। मैं तो उसे हिला भी नहीं सकती। जरूर आप लोगों ने कुछ किया होगा।"

सौखी राय रोती हुई बिटिया को तसल्ली दिलाने लगी। "बेटी !हमने कुछ न किया। हो सकता है भगवान की कोई करामात हो। आखिर तुम बारह वर्ष की हुई और भगवान अपना चढ़ौना मांगते हों।"

चुल्हिया को बापू की बात से संतोष न हुआ। वह फूटफूट कर रोने लगी। देखते-देखते कुछ लोग इकट्ठे हो गए। सब अटकलें लगा रहे थे। सौखी राय भी चिन्तित हो गए। कहीं उनकी बिटिया को कुछ बीमारी तो नहीं हो गई कि सोबना को उठा ही नहीं सकती। भगवान का ही प्रकोप लगा। लोग होम-जाप, अष्ट-जाप की सलाह देने लगे। चुल्हिया सिर धुन-धुन रो रही थी। किसी ओझा ने कहा, "इस पर देवी का प्रकोप है। इसके ऊपर देवी आई है।" कहते-कहते वह झाड़ने-फूंकने भी लगे।

तभी महंत रामचरन दास आ पहुंचे। भीड़ देख उन्होंने अपनी खरखरिया (एक सवारी, जिसे चार आदमी ढोते हैं) रुकवायी। सभी ने महंत जी को भीड़ का कारण बताया। सौखी राय ने चुल्हिया के जन्म से आज तक की कहानी सुनाई। महंत जी की हंसी निकल गई। उन्होंने सबों को संबोधित करते हुए ऊंची आवाज में कहा– "आप लोग क्यों परेशान कर रहे हैं इस लड़की को। प्रतिदिन यह पाड़े को उठाया करती थी। अतः पाड़े का बढ़ता हुआ वजन इसे महसूस नहीं हुआ। इसने एक सप्ताह तक अभ्यास नहीं किया। अब पाड़ा इससे उठ नहीं रहा है। आपने सुना नहीं– अभ्यासे नराः नथिया से शराः।"

चुल्हिया को महंत जी की बात समझ में आ गई। भीड़ घटने लगी। ओझा जी भी निराश लौटने लगे। सौखी राय ने पूछा, "बेटी ! अब तुम अपनी शर्त याद करो।"

चुल्हिया अब सब्ज परी हो गई। सोबना चढ़ौना चढ़ गया।

भुलावन

रामाशीष को अपने भुलक्कड़ स्वभाव के कारण अपना नाम ही बदलना पड़ा। मां-बाप ने रामाशीष नाम तो रखा, लेकिन उसके बार-बार भूलने की आदत से वे उसे प्यार से भुलावन ही कह कर पुकारने लगे। धीरे-धीरे मुहल्ले वाले भी उसे भुलावन कहकर पुकारने लगे। भुलावन किसी भी बात को दो कदम चलते ही भूल जाता।

भुलावन को मां-बाप ने पाठशाला भेजा। गुरुजी ने साल भर भुलावन को पढ़ाने की बड़ी कोशिश की। अंत में उसके पिता को बुला कर कहा, "भुलावन को पढ़ाना हमारे वश की बात नहीं। इसे कुछ भी याद नहीं रहता। बच्चों को गिनती याद कराने के सारे तरीके मैंने आजमा कर देख लिए, इस पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा।"

गुरुजी ने उधर इशारा किया, जहां कड़ी धूप में भुलावन मुर्गा बना सजा भुगत रहा था। उसके पिता को भी दया नहीं आई। भुलावन के पिता की बड़ी इच्छा थी कि उनका पुत्र थोड़ा पढ़-लिख जाए। चिट्ठी-पतरी तो बांच सके। उन्होंने गुरुजी से बिनती की– "गुरुजी ! आप थोड़ी-सी और मेहनत करके देखते।" फिर रुककर बोला– "अच्छा रहता अगर आप मेरे ही घर पर चलकर रहते। भगवान की दया से खाने-पीने की कमी नहीं है। उपज अच्छी हो जाती है। लेकिन मैं चाहता हूं कि मेरा बेटा भी मेरी ही तरह 'लिख लोढ़ा पढ़ पत्थर,' न रहे। मेरे लिए तो काला अक्षर भैंस बराबर है।"

गुरुजी ने आवाज लगाई– "ओ भुलावन ! इधर आ।" भुलावन जैसा का तैसा मुर्गा बना रहा। हिला भी नहीं। गुरुजी ने तीन-चार आवाज़ लगाई। भुलावन न आया। अंत में भुलावन के पिता लपक कर गये और उसे बुला लाये। भुलावन पसीने-पसीने था। गुरुजी को लगा, कहीं भुलावन अपना नाम भी न भूल गया हो। "हाय राम ! ऐसे चटिया (चेला, शिष्य) के साथ दिमाग खटाने से क्या फायदा?" उन्होंने मन ही मन कहा।

भुलावन के पिता ने पुनः पूछा– "गुरुजी आप मेरे बच्चे को पढ़ा दीजिए। मैं कुछ भी गुरु-दक्षिणा देने के लिए तैयार हूं।" कहते-कहते वह गुरुजी के पैरों पर गिर गये।

गुरुजी ने कहा, "आप मुझे शर्मिंदा मत कीजिए। विद्यादान देना मेरा कर्तव्य है। लेकिन आपका बालक विद्यादान के लायक ही नहीं।" उन्होंने परीक्षा लेने के भाव से पूछा, "भुलावन ! अभी तुम्हें मुर्गा क्यों बनाया गया था?"

भुलावन सिर खुजलाने लगा। गुरुजी और उसके पिता ने बहुत प्यार से, फिर गुस्से से उसके मुर्गा बनने का कारण पूछा, लेकिन भुलावन असमर्थ था।

गुरुजी ने एक प्रश्न भरी दृष्टि उसके पिता की ओर डाली। तत्क्षण जैसे उन्हें कुछ सूझ गया हो। बोले, "ठीक है। मैं आपके घर आकर रहूंगा और इस बच्चे की याददाश्त ठीक करने की कोशिश करूंगा।"

भुलावन के पिता बहुत खुश हुए। घर जाकर अपनी पत्नी को खुशखबरी सुनायी। दरवाजे पर का दलान गोबर से लिपाया। गुरुजी के आने की तैयारी हो गई। गुरुजी ने कुछ होम-जाप भी करवाया। पंडितजी ने भी आशा व्यक्त की कि बच्चा धीरे-धीरे पढ़ाई-लिखाई की ओर झुकेगा। एक ओझाजी ने तो ओझाई-फुकाई भी की। बहुत सारे ताबीज लटक रहे थे भुलावन के गले में।

गुरुजी नित नये प्रयोग करते। पर भुलावन के पल्ले कुछ भी नहीं पड़ता। एक दिन गुरुजी ने उसके पिता को बुलाकर कहा– "आप लोगों ने एक भूल कर दी। बच्चे का नाम भुलावन नहीं रखना चाहिए था। नाम का असर बच्चों के ऊपर पड़ता ही है, ऐसा शास्त्र-पुराणों में लिखा है।"

भुलावन के पिता को जैसे कुछ याद आ गया हो। उन्होंने कहा, "गुरुजी ! मैंने तो इसका नाम रामाशीष रखा था। प्यार का नाम ही इसका नाम बन गया। अब क्या करूं?"

भुलावन ने पत्नी को एक थप्पड़ लगाया और चिल्लाकर बोला,"गोल-गोल, खट्टा-खट्टा, कटोरे में तैर रहा था।"

"कढ़ी बड़ी ! ऐसे बोले ना।" पत्नी आधा हंसते आधा रोते हुए बोली।

"आज जरूर बना दूंगी।" उसने पति को "कढ़ी बड़ी" "कढ़ी बड़ी" रटाया भी।

छः महीने बाद भुलावन फिर ससुराल गया। उसकी पत्नी पहले से ही डरी थी, पता नहीं इस बार क्या भूल कर आता है उसका पति।वैसा ही हुआ। भुलावन ने आते ही बड़े प्यार से कहा, "रानी !तुम्हारी मां कितनी अच्छी चीजें बनाती हैं। वह बनाओ ना जो इस बार मैंने वहां खाया।"

"नाम तो बताओ।" पत्नी ने पूछा। "अरे वही ! फुलल-फुलल, गोल-गोल, मीठा-मीठा।"

"मैं नहीं समझूंगी, पहले नाम बताओ" पत्नी नखरा दिखाते हुए बोली।

भुलावन ने कहा, "मैंने कह तो दिया फुलल-फुलल, गोल-गोल, मीठा-मीठा।"

"ऊं हूं। पहले नाम बताओ।" पत्नी अब की बार और नजाकत से बोली।

"अभी बताता हूं।" भुलावन ने चटाचट पत्नी के दोनों गालों पर अनेक थप्पड़ जड़ दिए। चिल्लाता भी गया, "फुलल-फुलल, गोल-गोल, मीठा-मीठा।"

बहू का रोना सुन एक पड़ोसिन दौड़ी आई। उसने बहू को देखते ही कहा– "हाय !मार-मारकर कैसा पुआ जैसा गाल बना दिया बेचारी बहू का।'

भुलावन चिल्लाया– "वही-वही, पुआ बनाओ पुआ।" पड़ोसिन को समझते देर न लगी कि मार का कारण भुलावन का भुलक्कड़ स्वभाव ही था। उसकी हंसी निकल गई। भुलावन की पत्नी भी रोते हुए हंस दी।

उजाड़न-बसावन

वाजितपुर गांव में एक किसान रहता था। वह एक सम्पन्न किसान था। वह अपने हाथ से खेती-बाड़ी नहीं करता था। उसके खेत में दो-तीन जन (मजदूर) प्रतिदिन काम करते थे। उसके घर में एक नौकर भी था। उसका नाम बसावन था। जैसा नाम वैसी करामात। किसान भी बसावन जैसा नौकर पाकर बड़ा खुश था। बसावन के आने से उसकी जमीन-जायदाद भी बढ़ गई थी। पर एक कमी थी। उसकी कोई संतान न थी। संतान की कमी के आगे उसे सब धन-दौलत फीकी लगती।

एक दिन बसावन अपने मालिक से बोला– "मालिक !मैं वैद्यनाथ धाम (देवघर) से आया हूं। मैंने वहां आपकी संतान के लिए मनौती मांगी है। आज रात मैंने सपने (स्वप्न) में देखा कि साक्षात शंकर भगवान खड़े हैं और मुझसे कह रहे हैं– "तुम्हारे मालिक को जल्दी ही एक पुत्र होगा।"

यह सुनकर किसान खुश हुआ। सचमुच उसी वर्ष उसको एक पुत्र हुआ। बसावन ने बाबा वैद्यनाथ की कृपा ही मानी। उसका नाम **शम्भूनाथ** रख दिया।

एक दिन बसावन के घर से खबर आई कि उसके पिता गुजर गये हैं और उसे घर पर जाकर रहना जरूरी है। किसान बड़ा दुखी हुआ। बसावन ने उसे तसल्ली दिलाते हुए कहा– "आप चिंता न करें। मैं घर जाकर अपने छोटे भाई उजाड़न को भेज दूंगा।" किसान खुश हो गया। सोचा, बसावन का भाई ही हुआ, क्या अंतर पड़ेगा। जैसा बसावन वैसा उजाड़न।

चार दिन के बाद ही उजाड़न किसान के यहां हाजिर हुआ। वह उसके सामने तनकर खड़ा हो गया। किसान ने बड़े प्रेम से पूछा– "कहो उजाड़न क्या हाल है। बसावन सही-सलामत पहुंच तो गया?"

"मुझे आपके घर चाकरी करनी है। यदि आप मुझे नौकर रखेंगे तो मेरी दो शर्तें हैं।" उजाड़न बड़ी अकड़ के साथ बोला। किसान को बसावन के भाई के अकड़पन पर हंसी आई। उसकी उम्र का तकाजा समझ बड़े प्रेम से बोला– "हां, हां। बोलो क्या शर्तें हैं?"

"पहली शर्त यह कि आप जो हुकुम करेंगे मैं उसे पूरा करूंगा और मैं जब तक आपका काम न छोडूं आप मुझे भगायेंगे भी नहीं।" उजाड़न अपने इस कथन के साथ छाती तानकर खड़ा हो गया।

इस पर किसान की हंसी न रुकी। वह जोर से हंसते हुए बोला– "कोई भी मालिक अपने नौकर से इससे बढ़कर क्या चाहता है। मुझे तुम्हारी पहली शर्त मंजूर है। दूसरी क्या है?"

उजाड़न बोला– "दूसरी शर्त यह कि यदि मैं नौकरी छोड़ने की बात करूं तो मेरी नाक काट लें और यदि आपने मुझे भगाया तो मैं आपकी नाक काटूंगा।"

किसान ने दूसरी शर्त भी मंजूर कर ली।

उजाड़न रहने लगा। किसान बड़ा खुश हुआ। बसावन न सही उसी का भाई तो है। एक दिन किसान ने कहा– "उजाड़न !बंगा (कपास) के खेत में बहुत घास हो गयी है। जाकर काट दो।" उजाड़न ने खुरपी ली और जाकर किसान का हुकुम बजा आया। शाम को किसान टहलता हुआ कपास के खेत पर गया। देखकर उसने छाती पीट ली। उजाड़न ने खेत से सारे कपास के नन्हें पौधे निकाल दिए थे और घास छोड़ दी। घर आकर किसान उस पर बिगड़ पड़ा।

नौकर ने कहा– "आप ही ने तो कहा था, बंगा काट दो। मैंने आपकी आज्ञा पूरी की। मुझे अपनी शर्त भी तो याद है।"किसान को दूसरी शर्त भी याद हो आई। वह दांत पीसकर रह गया।

दूसरे दिन शम्भूनाथ ने शौच की थी। किसान ने कहा– "उजाड़न शम्भूनाथ को अच्छी तरह धो लाओ।"



उजाड़न ने शम्भूनाथ का हाथ पकड़ा और धोने ले चला। वह जाते-जाते एक धोबीघाट पर पहुचा। वहां एक पोखर मे धोबी का पटहा (लकड़ी का पटरा, जिस पर कपड़े पीटे जाते हैं) मिला। उजाड़न ने लड़के को उठाया और उसे पानी में भिगा-भिगा कर उस पर पीट मारा। शम्भूनाथ चिल्लाता रहा। अंत में बेहोश हो गया। उजाड़न ने कंधे पर उसे लादा और किसान के सामने हाजिर हुआ। किसान अपने बेटे की दुर्दशा देखते ही बिलखने लगा। उसे भगाने ही जा रहा था

कि उसकी लगाई शर्त याद हो आई।किसान के पड़ोसी उबल पड़े। उजाड़न ने कहा– "आप लोग बीच में न पड़ें। इन्होंने कहा था शम्भूनाथ को अच्छी तरह धो लाओ। मैंने अच्छी तरह धो डाला है। मेरा क्या कसूर?"

किसान दांत पीस कर रह गया। पड़ोसी लौट गए।

किसान अपनी रोती हुई पत्नी को दिलासा दिलाते बोला– "तुम चुप रहो। मैंने एक उपाय सोच लिया है।" धीरे से किसान ने उसके कान के पास कुछ भुनभुनाया।

किसान व उसकी पत्नी गंगा-स्नान के लिए चल दिए। उजाड़न को भी साथ ले लिया। पैदल रास्ता था। एक गांव में पहुंचकर रात हो गई। वे कुंए पर रुके। सबने कुछ खाया-पिया और सोने की व्यवस्था करने लगे। सब थके मांदे थे, जल्दी ही सोने लगे। किसान ने उजाड़न से कहा– "उजाड़न इधर आकर पैर दबाओ और मेरे ही बगल में सो जाओ।"

उजाड़न पैर दबा रहा था। उसे कुछ बात सूझी। उसने पूछा– "मालिक ! मैं आपकी बाईं तरफ सो लूं?"

"नहीं। इधर मेरी पत्नी सोई है। तुम दाहिनी तरफ सो जाओ।"

दाहिनी तरफ कुंआ था। थोड़ी जगह थी। उजाड़न ने थोड़ी देर तक सोने की कोशिश की। उसे नींद नही आई। वह उठा और किसान की पत्नी को उठाकर दाहिनी तरफ कर दिया। वह थकी हारी थी। उसे कुछ पता न चला। किसान भी गाढ़ी निद्रा में सोया हुआ था। आधी रात को किसान की नींद खुली। उसने अपनी दाहिने ओर सोये व्यक्ति को कुंए में धकेल दिया। उजाड़न तो जगा ही था। चिल्ला पड़ा– "मालिक !आपने यह क्या किया? मालकिन को कुंए में डाल दिया?"

किसान हड़बड़ाकर उठा। उजाड़न पर गरजते हुए बोला– "तुमको मैंने दाहिनी ओर सोने को कहा था न?" फिर उसने अपना दाहिना हाथ देखा। सचमुच उजाड़न दाहिनी ओर सोया था। अब किसान क्या करता? रोता-चिल्लाता रहा।

उजाड़न ने तसल्ली दिलाई– "मालिक अब रोने से क्या? अब घर चलिए।" किसान दुःखी भी था और शर्मिंदा भी। दो-तीन दिन वहीं रहा। रुपया पैसा भी जो साथ था वह पत्नी के साथ कुंए में गिर गया। पेट पर आ पड़ी। भूखा-प्यासा था। एक दिन रात में उजाड़न ने सलाह दी, "मालिक !हाथ पर हाथ रख कर बैठने से क्या होगा? (धीरे से कान में बोला)। किसी के घर सेंध मारकर कुछ माल निकाला जाए। आज अमावस्या की अंधेरी रात भी है।" किसान पहले तो झल्लाया, पर पेट का मारा था। उजाड़न की बात माननी पड़ी। एक घर के पीछे जा दीवार में सेंध मारने लगा। मिट्टी की दीवार थी। ढेर सारी मिट्टी इकट्ठी हो गई। किसान ने उजाड़न से कहा,"उजाड़न !तुम मिट्टी हटाओ।" उजाड़न भागा-भागा गया। दरवाजे पर कोई सोया था। उसे जगाकर बोला– "मालिक, एक टोकरी चाहिए।" सोया हुआ आदमी आंखें मलते हड़बड़ाकर उठा। पूछा– "कौन हो तुम?"

"मेरे मालिक आपके घर के पीछे सेंध खोद रहे हैं। मिट्टी उठाने के लिए एक टोकरी..." उजाड़न का वाक्य पूरा भी न हुआ कि वह व्यक्ति चिल्लाने लगा– "चोर," "चोर", "चोर"। आंगन में सोये लोग जाग गए। किसान भाग खड़ा हुआ। पीछे-पीछे उजाड़न भी भागा। अमावस्या की काली रात थी। अंधेरे ने दोनों को बचा लिया। पर किसान की आंखों के आगे अंधेरा छा गया। अब क्या करें? कहां जाएं?

दिशाविहीन दोनों चलते गए। सवेरा हुआ। जिस गांव में जाकर सवेरा हुआ, वह किसान की ससुराल का गांव था। अभी दोनों गांव की सीमा पर ही पहुंचे थे। किसान से चला नहीं जा रहा था। वैसी हालत में ससुराल जाना भी नहीं चाह रहा था। लेकिन मरता क्या न करता। उसने उजाड़न से कहा– "उजाड़न !बीच गांव में मेरी ससुराल है। तुम वहां जाकर मेरे आने की सूचना दे दो। मैं धीरे-धीरे आ रहा हूं।"

किसान से बोला भी नहीं जा रहा था। उजाड़न दौड़ता हुआ गया। किसान के ससुर जी से बोला– "आपके दामाद आ रहे हैं।" घर के लोग खुश हो गए। जमाई बाबू के स्वागत की तैयारी होने लगी। बासमती चावल, दाल एवं कढ़ी, बड़ी, तरुआ की सुगंध दरवाजे तक फैल गई। तभी उजाड़न को कुछ सूझा। उसने किसान के ससुरजी से कहा– "मालिक, आपके दामादजी का पेट खराब है। उनके लिए केवल गीला भात बनवाइयेगा।"

सास ने जब यह खबर सुनी तो अपना सिर पीट लिया। वह तो सब कुछ बना चुकी थी। सोचा– "चलो !नौकर को ही खिला दूंगी।"

किसान हारा-थका हुआ पहुंचा। उसकी हालत देख ससुराल वाले बड़े दुःखी हुए। सास तो नाती एवं बेटी की मृत्यु की खबर सुन बिलखने लगी।

उजाड़न ने सास को समझाते हुए कहा– "अब जाने वाले के लिए रोकर क्या होगा? एक दामाद तो बचा। उनका भी तो आप लोग ख्याल करें। एक सप्ताह के भूखे हैं। इन्हें कुछ खिलाइए-पिलाइए।"

सबका ध्यान अब किसान पर लग गया। लेकिन दामादजी के सामने केवल भड़सटका (गीला चावल जिससे मांड़ नहीं निकालते) परोसने की किसी की हिम्मत नहीं हो रही थी। एक सलहज (साले की पत्नी) ने हिम्मत की। एक थाल में भड़सटका, उस पर थोड़ा घी और थोड़ी नीमकी (नींबू का सादा आचार) डाल अपने नन्दोई के आगे परोसा। दामादजी अंदर घर में खा रहे थे। सलहज पंखा झल रही थी। अन्य साली-सलहज भी खड़ी थीं। किसान अपने आगे का खाना देख दुःखी हो रहा था। तभी उजाड़न बाहर बरामदे से खांसता आया और सामने एक लोटा पानी रख कर बैठ गया। किसान उजाड़न से अपनी थाली छुपा रहा था। तभी उजाड़न के सामने पांच पकवान से भरा एक थाल आ गया। शुद्ध घी में तली खाद्य सामग्री अपनी सुगंध बिखेर रही थीं। उजाड़न अपनी थाली किसान को अच्छी तरह दिखाना चाह रहा था। किसान अपनी थाली के भड़सटके का राज समझ गया। उससे खाया न गया। उजाड़न ने डटकर खाया और डकारता हुआ किसान के सामने पहुंचा।

भूखा किसान रात के भोजन की प्रतीक्षा करने लगा। लेकिन उस रात ही नहीं बल्कि तीन दिनों तक लगातार सुबह-शाम उसके सामने वही भड़सटका भात और उजाड़न के सामने स्वादिष्ट भोजन के थाल आते रहे। अंत में किसान ने अपने ससुराल वालों से विदा ली।

रास्ते में एक पोखर के भीड़े (पोखर का किनारा) पर दोनों सुस्ताने लगे। गर्मी के दिन थे। पोखर का पानी देख किसान को नहाने की इच्छा हो रही थी। लेकिन उजाड़न के डर से वह पानी में उतर नहीं रहा था। अब किसान की हालत सांप-छछुंदर की हो गई थी। एकाएक उसे क्या सूझा कि उसने उजाड़न से कहा– "उजाड़न! एक काम करो। अब मैं तुम्हें नहीं संभाल सकता। तुम अपनी शर्त पूरी करो। मेरी नाक झट काट लो और मुझे छुट्टी दे दो।"

उजाड़न कब चूकने वाला था। उसने झटपट छुरी निकाली। बांए हाथ से किसान की नाक पकड़ी, दाहिनें में छुरी। वह छुरी चलाने ही जा रहा था कि पीछे से किसी ने उसका हाथ थाम लिया। वह बसावन था। बसावन की एकाएक उपस्थिति से उजाड़न भयभीत हो गया। जब तक उजाड़न प्रश्न करता स्वयं बसावन चिल्ला पड़ा– "नमकहराम, जिस थाली में खाना, उसी में छेद करना।" किसान ने आंखें खोलीं। सामने बसावन को देख उसके हृदय में खुशी की लहर दौड़ गई। लेकिन दूसरे ही क्षण अपनी दुर्दशा पर शर्म से आंखें झुक गईं। बसावन किसान के पांवों पर गिरकर बोला– "मालिक! मुझे माफ कर दीजिए। मुझसे ही गलती हो गई। मुझे इस उजाड़न को आपके पास नहीं भेजना चाहिए था। उसका जैसा नाम, वैसा काम हुआ। आप घर चलिए। मैं आपको ढूंढ़ता हुआ आपके ससुराल पहुंचा था। सारी कहानी मुझे मालूम हो गयी। बाकी जिंदगी मैं आपकी सेवा करूंगा। हाय! क्या हाल बना दिया हुजूर का?" वह रोने लगा। किसान के भी आंसुओं की झड़ी लग गई।

शाम होने को आ गई थी। बसावन एकाएक दूर बैठे उजाड़न पर लपका। उसने एक चाकू भी निकाल लिया। किसान को भी पता नहीं कहां से बल मिल गया। उसने बड़ी मेहनत से बसावन को वश में किया और उजाड़न को क्षमा कर दिया। बसावन गदगद हो बोला– "मालिक! धन्य हैं, आप।" किसान को सहारा दे बसावन उसके घर की ओर चल दिया। उधर हारा-थका उजाड़न भी सिर झुकाए दूसरी दिशा की ओर चल दिया।

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

